ॐ

दयानन्द का सत्य स्वरूप।

जिसमें दयानन्द हृदय, दयानन्द का कच्चा चिट्ठा और दयानन्द की बुद्धि इन तीन ट्रैक्टों को इकट्ठा कर दिया गया है।

लेखक—

पण्डित जे० पी० चौधरी काव्यतीर्थ

सम्पादक

सद्धर्म प्रचारक, आर्य समाज, काशी।

प्रकाशक—

चौधरी एण्ड सन्स

पुस्तक विक्रेता तथा प्रकाशक

बनारस सिटी

प्रथम संस्करण	सन् १९३० ई०	मूल्य ।=)

Acc. No. 13030

Manager Shiwaprasad Gupt.
at the Arjun Press, Kabir chaura, Kashi

दयानन्द का सत्य स्वरूप।

मुरादाबाद निवासी किसी लाला जगन्नाथ दास ने दयानंद हृदय, दयानन्द का कच्चा-चिट्ठा, और दयानन्द की बुद्धि नामक तीन पुस्तिकायें लिखकर स्वामी दयानन्द पर बुरी तरह से आक्रमण किया है। आजतक इन ट्रैक्टों की ओर किसी ने ध्यान न दिया था) इससे आर्यजनता में भ्रम फैल रहा था। लोग कहने लगगये थे कि यदि आक्षेप झूठा होता तो आर्यसमाज उत्तर देता, परन्तु ये आक्षेप सत्य हैं, इसलिये आर्यसमाजी चुप हैं। मैंने इन ट्रैक्टों को कभी भी न देखा था। इसबार गत मास में इन ट्रैक्टों के देखने का अवसर प्राप्त हुआ। तीनों ट्रैक्टों में प्रायः दो चार भिन्न विषय को छोड़कर सब बातें एकही है। मैं नहीं समझता कि लेखक ने

ऐसा क्यों किया है ? तीनों में एकही बात रखकर तीनपुस्तकों के लिखने की कोई आवश्यकता न थी, शायद लेखक ने—

प्रायः "प्रकाशतां याति मलिनः साधु वादया" इस उक्तिका अनुसरण करके नाम कमाने का एक सरल मार्ग समझ लिया हो नहीं तो दूसरा कारण और क्या हो सकता है।

तीनों पुस्तकों में पं० कालूराम शास्त्री के प्रश्नों का संचय है, इससे पता चलता है कि लेखक स्वयं शास्त्रों से अनभिज्ञ है। यदि लेखक को संस्कृत साहित्य तथा धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय होता तो इस तरह दूसरे के नाद में पड़कर स्वामी दयानन्द पर व्यर्थ आक्षेप न करता। अस्तु, इस पुस्तिका में तीनों पुस्तिकाओं के लेखों का उत्तर दिया गया है।

लेखक ने दलपतराय संकलित दयानन्द जीवन चरित्र पर से स्वामी जी पर यह आक्षेप किया है कि स्वामी जी भंग पीते थे। इसीसे उनकी बुद्धि भ्रान्त थी, और भंगके नशे में वेदादि सच्छास्त्रविरुद्ध महाअशुद्ध सर्वथा मिथ्या और असमञ्जसादिपूर्ण सत्यार्थ प्रकाश आदि लिखे हैं।

उत्तर-यदि स्वामीजी में भंग पीने की आदत पड़गई थी तो उसका वे स्वयं पश्चात्ताप करते हैं और उसे त्याग देते हैं। संसार में बड़े मनुष्य वही कहलाते हैं जो अपने दोषों को छिपाते नहीं, उपदेश के निमित्त उन दोषों को प्रगट कर देते हैं। इससे स्वामी पर कोई आक्षेप नहीं हो सकता, किन्तु इसमें उनकी महत्ता है। स्वामीजी कोई ईश्वर नहीं थे, आखिरकार मनुष्य

ही थे। पर क्या सनातनधर्म के अनुसार भंग पीना दोष है? क्योंजी लालाजी, ठीक ठीक कहियेगा? मथुरा के चौबे भंगकी तरंग में मस्त होकर गाते हैं।

भंगतो ऐसी छानिये ज्यों जमुना की कीच।
घरके जानैं मरगये आप नशे के बीच ॥

क्या यह ठीक नहीं है? भंगके पुजारी अधिकतर पण्डे पुजारी सर्वत्र होते हैं। बड़े २ सनातनी पण्डित प्रतिदिन भंग छानते हैं। यदि सनातनधर्म के अनुसार भंग छानना दोष या पाप होता तो क्या आपके गुरुलोग भंग छानते? फिर आप क्यों स्वामी जी पर आक्षेप कर रहे हैं, जबकि उन्होंने स्वयं उसको ऐब समझकर त्याग कर दिया। क्या लेखक की यही भलमनसाहत है? क्या शरीफ़ आदमी के यही लक्षण हैं? रात दिन तुम भंग छानो, तुम्हारे गुरुलोग भी छाने, नहीं नहीं, तुम्हारे भोलाबाबा भी छानें तबतो भंग पीने में दोष नहीं, पर स्वामीजी पर सब दोष आगये क्योंकि उन्होंने भंग की आदत को बुरी बतलाई और उसे त्याग दी?

जनाब लालाजी, स्वामीजी ने तो आपके कथनानुसार सत्यार्थ-प्रकाश जैसे गपोड़ शास्त्र ही लिखडाला और इसीलिये सनातनी ब्रह्मचर्य का नाश करके दो दो वर्ष के बालक और और बालिकाओं की शादी करते हैं, शास्त्रों का नाम लेकर पेट के लिये रातदिन झूठ बोलते हैं। देवीजी को शराब चढ़ाते और बराबर पीते हैं। पूरे २ बकरे काटकर हज़ाम करते हैं,

वेद शास्त्र के स्थान में तोता मैना सुग्गा बहत्तरी साढ़ेतीन यार का किस्सा पढ़ते हैं। क्योंकि स्वामी जी ने इनसब बातों को मना किया है, परन्तु आपके भोलाबाबा ने भंग के नशे में बेचारी सती स्त्रियों को ही भ्रष्ट करडाला और भंग के तरंग में शैवमत नामका एक पाखण्ड ही चला डाला। आप कहियेगा कि यह सब गलत है। नहीं २ लालाजी, गलत नहीं सोलह आना ठीक है। प्रमाण चाहिये तो लीजियेः- पद्म-पुराण सृष्टि खण्ड अध्याय ५३

पुरा शर्वःस्त्रियो दृष्ट्वा युवतीः रूपशालिनीः।
गन्धर्व किन्नराणां च मनुष्याणां च सर्वतः १
मंत्रेण ताः समाकृष्य त्वतिदूरे विहायसि।
तपो व्याज परो देवः तासुसंगतमानसः॥ २॥
अतिरम्यां कुटीं कृत्वा ताभिः सह महेश्वरः।
क्रीडां चकार सहसा मनोभवपराभवः॥ ३॥
एतस्मिन्नन्तरे गौर्याश्चित्त मुद्भ्रान्तां गतम्।
अपश्यद्ध्यानयोगेन क्रीडन्तं जगदीश्वरम्।
स्त्रीभिरन्तर्गतं ज्ञात्वा रोषस्य वशगाऽभवत्॥
ततः क्षेमकरीरूपा भूत्वा च प्रविवेश सा।
व्योमैकान्तेऽतिदूरेच कामदेव समप्रभम्॥
वामातिमध्यगं शुभ्रं पुरुषं पुरुषोत्तमम्।
स्त्रीभिः सह समालिंग्य प्रक्रीडन्तं मुहुर्मुहुः॥
चुम्बन्तं निर्भरं देवं हरं रागप्रपीडितम्।

वृत्तं क्षेमंकरी दृष्ट्वा निपपाताग्रतस्तदा॥
तासां केशेषु चाकृष्य चकार चरणाहतिम्।
त्रपया पीडितः शर्वः परांमुखमवस्थितः॥
केशेष्वाकृष्य रोषाशाः पातयामास भूतले।
स्त्रियः सर्वा धरां प्राप्य सहसा विकृताननाः॥
उमाशाप प्रदग्धांगा म्लेच्छानां वशमागताः।
ताश्चापडलस्त्रियः ख्याताःअघशाधवसंयुताः॥
अद्याप्युमाकृतं शापं सर्वाः ताश्च समश्नुवुः।

स्त्रियों को देखकर मंत्र से उन्हें खींचकर आकाश में बहुत दूर पर तपके बहाने से उनसे समागम करने का विचार किया। महेश्वर, काम से पीडित होकर, अत्यन्त सुन्दर कुटी बनाकर उनके साथ क्रीड़ा करने लगे। इसी समयमें गौरी का चित्त उद्भ्रांत हुआ और ध्यान योग से स्त्रियोंके साथ विहार करते हुये जगदीश्वर को मालूम करके बहुत क्रुद्ध हुई तब क्षमंकारी रूप धर करके उस कुटी में प्रवेश किया आकाश में बहुत दूर पर, काम देवके समान सुन्दर स्त्रियों का आलिंगन करके विहार करते हुये और राग से युक्त होकर चुम्बन करते हुये कामदेवके समान कान्ति रखने वाले पुरुषोत्तम शिवको देखकर गौरी उनके आगे जा पड़ी। उन स्त्रियोंका केश पकड़कर उन्हें लात मारा। शिवने लाजके मारे मुहं फेर लिया। उनका केश पकड़ कर भूतल पर पटक दिया। सब स्त्रियां भूतल पर गिरकर बदसूरत बन गईं। उमा के शापसे

दग्ध होकर वे सब म्लेच्छों के आधीन में हो गईं। वे सब चाण्डाल की स्त्री के नामसे प्रसिद्ध हुईं। आज तक उमाके शापको सब स्त्रियां भोग रही हैं।

(२) पार्वती ने शिव से पूछा है कि पाखण्डियों का लक्षण क्या है? वे कैसे पहचाने जाते हैं तब शिवने कहाः—

येऽन्यं देवं परत्वेन वदन्त्यज्ञानमोहिताः।
नारायणाज्जगन्नाथात्ते वै पाषण्डिनस्तथा॥
कपालभस्मास्थिधरा येह्यवैदिकलिंगिनः।
ऋते वनस्थाश्रमाच्च जटावल्कल धारिणः॥
यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः।
समत्वेनैव वीक्षेत सपाषण्डी भवेत्सदा॥
किमत्रबहुनोक्तेन ब्राह्मणा येऽप्य वैष्णवाः।
नस्प्रष्टव्या न वक्तव्या न द्रष्टव्याः कदाचन॥

अर्थ—जो लोग अज्ञान से मोहित होकर नारायण विष्णु से दूसरे देवताओं को श्रेष्ठ मानते हैं वे पाखण्डी हैं। जो कपाल भस्म हड्डी आदि धारण करते हैं, वानप्रस्थियों को छोड़ कर जो जटा और वल्कल धारण करते हैं जो नारायण को ब्रह्मा रुद्र आदि देवताओं के बराबर समझते हैं वे सब पाखण्डी हैं। बहुत क्या कहूँ जो ब्राह्मण वैष्णव नहीं उसे न तो छूना चाहिये, न तो उससे बोलना चाहिये और न उसे देखना चाहिये। यह सुन कर पार्वती ने पूछाः—

कपाल भस्म चर्मास्थि धारणं श्रुतिगर्हितम् ।
तत्त्वया धार्यते देव गर्हितं केन हेतुना ॥

अर्थ—कपाल भस्म चर्म अस्थि का धारण करना यदि वेद विरुद्ध है तो किस कारण से आप उस निन्दित चर्मास्थि को धारण करते हैं ? शिव ने उत्तर दिया कि स्वायंभुवान्तर में नमुचि आदि बड़े वीर दैत्य हुये। सब विष्णु में प्रेम करने वाले शुद्ध, सर्व पाप रहित, वेद धर्म युक्त थे। इनको मारने के लिये देव लोग विष्णु के पास गये विष्णु ने मुझसे कहा।

त्वंहि रुद्रमहाबाहो, मोहनार्थं सुरद्विषाम् ।
पाषण्डाचरणं धर्मं कुरुष्व सुरसत्तम ॥
तामसानि पुराणानि कथयस्व चतान्प्रति ।
मोहनानि च शास्त्राणि कुरुष्वच महामते ॥
कपाल चर्मभस्मास्थिचिह्नान्यपि हि सर्वशः ।
त्वमेव धृत्वा लोकान्वै मोहयस्व जगत्त्रये ॥
तथा पाशु पतं शास्त्रं त्वमेव कुरु सुव्रत ।
कंकाल शैव पाखण्ड महा शैवादि भेदतः ॥
अवष्टभ्यमतं सम्यक् वेदबाह्यं द्विजाधमाः ।
भस्मास्थिधारिणः सर्वे भविष्यन्तिन संशयः ॥
त्वां परत्वेन वक्ष्यन्ति सर्वशास्त्रेषु तामसाः ।
तेषां मतमधिष्ठाय सर्वे दैत्याः सनातनाः ॥
भवेयुस्तेमद्विमुखाः क्षणादेव न संशयः ॥

अहमप्यवतारेषु त्वां च रुद्रमहाबल ।
तामसानां मोहनार्थं पूजयामि युगे युगे ॥
मतमेतदवष्टभ्य पतन्त्येव न संशयः ।

अर्थ—हे रुद्र देवताओं के विरोधियों को अज्ञानी बनाने के लिये तुम पाषण्ड धर्म को धारण करो । उन्हें तामस पुराण बतलाओ । उनको आज्ञानी बनाने वाले शास्त्रों को बनाओ । तुम कपाल चर्म अस्थि धारण करके सब को अज्ञानी बना दो । पाशुपत शास्त्र बनाओ । नीच ब्राह्मण वेदवाह्य उस मत को अच्छा समझ कर भस्म अस्थि चर्म आदि धारण करेंगे । और सब तामस शास्त्रों में तुम्हीं को सब से बड़ा कहेंगे । सब सनातनी दैत्य लोग उनके मत को मान कर मेरे विमुख हो जावेंगे । इस मत के मानने वाले अवश्य पतित हो जाते हैं ।

यह सुन कर शिव ने कहाः—वासुदेव की उक्त बात सुन कर मैं बहुत उदास हुआ और नमस्कार करके विष्णु से मैंने कहाः—हे देव, यदि मैं ऐसा करूंगा तो मेरा सर्व नाश हो जावेगा, इस लिये मैं ऐसा न करूंगा । तब विष्णु ने कहा कि तुम "श्रीरामायनमः" इस मन्त्र का जप करते रहोगे तो तुम्हें पाप न लगेगा ।

इमं मन्त्रं जपन्नित्य ममलस्त्वं भविष्यसि ।
भस्मास्थि धारणाद्यत्तु संभूतंकिंचित्पंत्वयि ॥

भस्म चर्मादि धारण करने से जो पाप होगा, वह सब

इस मन्त्र के जप से नष्ट हो जायगा जाइये देवताओं का काम कीजिये। यह सुन कर शिवाजी चले गये। अब वे अपनी करतूत स्वयं पार्वती से कहते हैं:--

देवतानां हितार्थाय वृत्तिः पापण्डिनां शुभे।
कपाल चर्म भस्मास्थिधारणं तत्कृतं मया॥
तामसानि पुराणानि यथोक्तं विष्णुना मम।
पापण्डशैव शास्त्राणि यथोक्तं कृतवानहम्॥
मच्छक्त्या वैसमाविश्य गौतमादीन् द्विजानपि।
वेदवाह्यानि शास्त्राणि सम्य गुक्तं मयानघे॥
इदं मतमवष्टभ्य मांदृष्ट्वा सर्वं राक्षसाः।
भगवद् विमुखाःसर्वे वभूवुस्तमसावृताः॥
भस्मास्थि धारणं कृत्वा महोग्रतमसा वृताः।
मामेवपूजयांचक्रुर्मांसासृक् चन्दनादिभिः॥
मत्तो वरप्रदानानि लब्ध्वा मदवलोद्धताः।
अत्यन्त विषया सक्ताः काम क्रोध समन्विताः॥
सत्वहीनास्तु निर्वीर्यो जिता देवगणैस्तदा।

अर्थ--हे देवि देवताओं के हित के लिये पाखण्डियों की वृत्ति मैंने स्वीकार की और भस्मादि धारण किया। तामस पुराण और पाखण्ड शैव शास्त्र बनाया। मैंने अपनी शक्ति से गौतमादि द्विजों में प्रवेश करके वेदवाह्य शास्त्रों को कहा। इस मत को स्वीकार करके सर्व राक्षस ईश्वर से विमुख तामसावृत भस्मादि धारण करके मांसादि से मेरी

पूजा करने लगे। अत्यन्त विषयासक्त और सत्वहीन निर्वीर्य हो गये और मारे गये इत्यादि

इसके बाद पार्वती ने पूछाः—

तामसानिच शास्त्राणि समाचक्ष्व ममानघ।
संप्रोक्तानिच यैर्विप्रैर्भगवद्भक्तिवर्जितैः॥

हे अनघ। उन तामस शास्त्रों को बतलाइये जिन्हें भगवद्भक्तिहीन ब्राह्मणों ने बनाया। इसके उत्तर में शिव ने कहाः—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि तामसानि यथा क्रमम्।
येषांस्मरणमात्रेण पातित्यं ज्ञानिनामपि॥

हे देवि तामस शास्त्रों को सुनो जिसके स्मरण मात्र से ज्ञानी भी पतित हो जाते हैं। आगे सब का नाम गिनाया है।

कणादकृत वैशेषिक गौतमकृत न्याय शास्त्र, कपिलकृत सांख्यदर्शन वृहस्पतिकृत चार्वाकदर्शन मायावाद बौद्ध-शास्त्र ईश्वरजीव के एकत्व प्रतिपादक शास्त्र, जैमिनिका पूर्व मीमांसा। इतने तो तामस शास्त्र हैं। अब पुराणों की बात सुनिये मत्स्य कूर्मलिंग शिव स्कन्द अग्नि ये छ पुराण तामस पुराण है। इनसे नरक प्राप्ति होती है। विष्णु, नारद भागवत गरुड़ पद्म वाराह सात्विक पुराण हैं ये मोक्ष देने वाले हैं। ब्रह्मवैवर्त मार्कण्डेय भविष्य वामन

ब्रह्म पुराण राजस हैं। ये स्वर्ग देने वाले हैं। इसी प्रकार सब स्मृतियां भी हैं अन्त में कहा:—

> किमत्रबहुनोक्तेन पुराणेषु स्मृतिष्वपि ।
> तामासा नरकायैव वर्जयेत्तान् विचक्षणः ॥

बहुत क्या कहें, स्मृतियों और पुराणों में जो तामस शास्त्र हैं वे नरक लेजाने वाले हैं बुद्धिमान मनुष्य उन्हें न मानें। पद्म पुराण अ०२६३ उत्तर खण्ड

क्योंजी लालाजी, होश ठिकाने आया। अब फैसला करो कि भंगके नशे में स्वामीजी की बुद्धि भ्रष्ट थी या आपके भोला बाबा की। खैर जाने दीजिये आपतो कालूराम के शिष्य हैं। इसे गपोड़शास्त्र तो कहियेगा नहीं, कृपा करके कालूराम से इतनी प्रार्थना तो कर दीजियेगा कि शैवमत के पाखण्ड धर्म होने की घोषणा तो हिन्दूपत्र में निकाल दें।

आगे लालाजी लिखते हैं:—

पृष्ठ ३७ तथा ३८ से प्रकट है कि उसने जिन पुरुषों को अपनी आंखों से गोवध करते और मांस खाते देखा उन्हीं से सीधा आदि लेकर अपने ब्रह्मचारीसे भोजन बनवाया और खाया।

उत्तर—पृष्ठ ३७, ५८ में क्या लिखा है, इसका पता तो आपके ट्रैक्ट पढ़ने से नहीं लगता। यह भी आपने पाठकों को एक प्रकार का धोखा ही दिया है। जब आप

आक्षेप करने चले तो कथा अवश्य देनी चाहिये थी। इस प्रकारकी धूर्तबाजी से आक्षेप करना शराफत नहीं है। आपके लेख से यह पता नहीं लगता है कि स्वामीजी ने किसको गोमांस खाते देखा और किसको गोवध करते देखा। पाठको, जब लेख ही संदिग्ध है तो उत्तर कैसे दिया जाय। परन्तु क्या आपके इस संदिग्ध लेखका अभिप्राय मुसलमानों से है ? जैसा कि उनके जीवनचरित्र में पाया जाता है कि स्वामीजी एक बार एक मुसलमान के यहां ठहरे थे, जबकि हिन्दुओं ने उनको ठहरने का स्थान नहीं दिया था।

यदि आपका तात्पर्य्य यही है तो स्वामी ने कोई बुरा काम नहीं किया आपत्काल में सर्वत्र अन्न ग्रहण करने में शास्त्रकारों ने कोई दोष नहीं माना है।

सर्वतः प्रतिगृह्णी याद्‌ ब्राह्मणस्त्वनयं गतः।
पवित्रं दुष्यतीत्येतद्‌ धर्मतो नोपपद्यते ॥ १०२
जीवितात्ययमापन्नो योन्नमत्ति यतस्ततः।
आकाशमिव पंकेन न स पापेन लिप्यते ॥ १०४
मनु० अ-१०

* * *

आपद्गतो द्विजोऽश्नीयाद्‌ गृहणीयाद्वायतस्ततः।
न लिप्यते सपापेन पद्मपत्रमिवांभस्ति। वृ० या० ६-३१८॥।

यदि ब्राह्मण विपत्ति में फंसा हो तो सब जगह से अन्न ग्रहण करले। धर्म के अनुसार यह ठीक नहीं है कि पवित्र कभी

भी दूखित होता है। जीवन के खतरे में पड़ने पर जो जहां तहां से अन्न लेकर खाता है वह पाप से ऐसे लिप्त नहीं होता जैसे आकाश कीचड़ से।

आपत्ति में पड़ा हुआ द्विज जहां चाहे वहां से अन्न ग्रहण करले वह पाप से ऐसे लिप्त नहीं होता जैसे कमल जल से॥ इसके प्रमाण में उपनिषद् में कथा भी मौजूद है। उशस्तिचाक्रायण ऋषि की कथा छान्दोग्योपनिषद् में प्रसिद्ध है। जिन्होंने भूख से पीड़ित होकर प्राणरक्षा के लिये आपत्काल में पीलवान की जूठी खिचड़ी तक खायी थी परन्तु वे दोषी न हुये।

शास्त्र के उक्त प्रमाणों से यदि स्वामीजी ने मुसलमान के यहां से अन्न ग्रहण किया और शिष्यों से पकवाकर खाया तो कोई पाप नहीं किया, और न उनकी बुद्धि भ्रान्त थी। यदि बुद्धि भ्रान्त है तो लेखक की, जो शास्त्रों का तो एक अक्षर भी नहीं जानता पर द्वेषवश आक्षेप करता है। आगे आपने यह आक्षेप किया कि स्वामी ने मूर्तिपूजक का अन्न न खाया यद्यपि वे मूर्तिपूजक के लड़के थे इत्यादि।

उत्तर—पिछले लेख से जब सिद्ध होगया कि लिंग पूजा पाखण्ड है तब सनातनधर्म के अनुसार ही उन्होंने पाखण्डी के यहां अन्न ग्रहण करना उचित न समझा। मूर्तिपूजक का पुत्र होने से क्या? यदि पिता अधर्म मार्गपर हो तो क्या पुत्र भी उसी मार्ग का अनुसरण करे। यह कहां की फिलासफ़ी है? तुम्हारे बाप दादे तो अष्टका यज्ञ में गौ मारकर खाते थे,

(प्रमाण आगे मिलेगा) फिर तुम क्यों नहीं करते ? इस-लिये न ? कि वह बुरा काम था, चाहे बापदादा करते ही क्यों न हों। फिर स्वामी पर आक्षेप क्यों ? राजस्थान में स्वामीजी मूर्तिपूजा का खण्डन न करते थे ऐसा लिखना आपका गलत है। वे बराबर खण्डन करते थे इसलिये महाराज उदयपुर ने उनसे कहा था कि आप मूर्तिका खण्डन न करें। मैं आपको जागीर दे देता हूं सुख से रहिये। स्वामी जी ने कहा कि यदि मुझे सुखसे रहना होता तो अपनी जमीन्दारी छोड़ कर सन्यास न लेता। मैं परमात्मा की आज्ञा मानू या आपका ? इतने निर्भीक और निर्लोभी को राजभय या धनका लोभी बतलाना लेखक के द्वेष का उबाल है। स्वामीजी ने यदि कहीं से द्रव्य लिया तो परोपकार के लिये—जैसा कि आजकल भी मालवीय जी सरीखे देश-हितैषी करते हैं, परन्तु उन्हें कोई लालची नहीं कहता।

आगे आपने स्वामीजी के मुर्दे चीरने की बात लिखकर लिखा है कि भला यह द्विजाति और सन्यासियों का धर्म है या नीचों का कर्म इत्यादि।

उत्तर—यहां तो लेखकने द्वेष की पराकाष्ठा प्रकट कर दी। हज़ार हों ब्राह्मण क्षत्रिय डाक्टरख़ाने में मुर्दों को चीरते सब फाड़ते हैं आपके विचारमें करते हैं नीच कर्म। डाक्टरी पढ़नेके समय मसाला भरा हुआ साल साल भर का मुर्दा चिराया जाता है और सब सनातनी द्विज चीड़ते फाड़ते हैं वह नीच कर्म

नहीं हुआ, पर स्वामीजीने अपने अनुभवके लिये-शरीर विज्ञानको समझने के लिये मुर्दे को चीरा तो उन्होंने बड़ा पाप किया।

लाखों मैथिल ब्राह्मण मछली मार मार खा जाते हैं वह नीच कर्म नहीं, लाखों ब्राह्मण बकरे भेड़ों को मार मार खाल खींचते हैं वह नीच कर्म नहीं है क्यों कि वे सब सनातनधर्मी हैं। पर स्वामी ने मुर्दे को चीरा तो वह नीच कर्म हो गया। इसीसे तो कहा जाता है कि सनातनियों की बुद्धि पोपों के प्रभाव से इतनी भ्रष्ट हो गई है कि बेचारों को तर्क से काम ही लेने नहीं देती। अबतो चेत जाओ और द्वेष भाव त्याग दो।

इसके आगे आपने जो स्वप्न का हाल लिखा है वह गप्प है। किसी भी जीवन चरित्र में नहीं पाया जाता जब जीवन चरित्र ही में नहीं तो उत्तर काहे का।

आगे आपने सन् १८७५ के छपे हुये सत्यार्थ प्रकाश का हवाला देकर लिखा है—पृष्ठ ४५ में मांसादिक से होम करना लिखा है। पृष्ठ १४६ में मांस के पिण्ड देने में कुछ पाप नहीं। पृ० १४८ में गाय को गधी के समान लिखा है। उसको घास जल भी दुग्धादि प्रयोजन के वास्ते देने अन्यथा नहीं। पृष्ठ १७१ यज्ञ के वास्ते जो पशुओं की हिंसा है सो विधिपूर्वक हनन है। पृष्ठ ३०२ कोई भी मांस न खाय तो जानवर पक्षी मत्स्य और जलजन्तु जितने हैं उनसे शत सहस्र गुने हो जांय फिर मनुष्यों को मारने लगें और खेतों में धान्य ही न होने पावे फिर मनुष्यों की आजीविका नष्ट होने से सब

मनुष्य नष्ट हो जांय। पृष्ठ ३०३ जहां २ गोमेधादिक लिखे हैं वहां २ पशुओंमें नरोंका' मारना लिखा है और एक बैल से हजारहाँ गैयाँ गर्भवती होती हैं इससे हानि भी नहीं होती और जो वंध्या होती है उसको भी गोमेधमें मारना क्यों कि वंध्यागाय से दुग्ध और वत्सादिकों की उत्पत्ति नहीं होती। पृष्ट ३६६–पशुओं को मारने में थोड़ा सा दुःख होता है परन्तु यज्ञ में चराचर का अत्यन्त उपकार होता है इति। पाठक गण! ऐसा शास्त्र विरुद्ध अधर्म युक्त लेख करना दयानन्द की भ्रान्त बुद्धि ही का परिणाम है अथवा ह्रेपाग्नि-की प्रेरणा का काम।

उत्तर—जब स्वामी जी ने स्वयं १८७५ के छपे सत्यार्थ प्रकाश को रद्द कर के दूसरी आवृत्ति छपाई और मांसदि प्रकरण: निकाल दिया तो फिर उस सत्यार्थ प्रकाश के सहारे उन पर आक्रमण करना कितनी भारी धोखे बाजी और चाल बाजी है। इसके प्रमाण के लिये "सत्यार्थ-प्रकाश का चमत्कार" नामक ग्रन्थ पढ़िये।

क्या सचमुच में उपर्युक्त सबही 'बातें सनातनधर्म के शास्त्रों के विरुद्ध अधर्म हैं? या लाला जगन्नाथदास की मूर्खता तथा अपने सनातनधर्म का पुस्तकों की अज्ञानता का परिणाम है।

भाई कुछ शर्म खाते, जैसे गुरु वैसे चेला। जैसे कालूराम वैसे तुम हो। अपने घर की पुस्तकों को पढ़ा तक नहीं। कालूराम का अन्ध भक्त होकर अपने सनातनधर्म के सिद्धान्त को शास्त्रविरुद्ध और अधर्म समझता है, और अपनी बेअकली से अपने घरके दोष को स्वामी जी पर द्वेशवश लगाता है। हम नहीं कहते कि १८७५ का सत्यार्थ प्रकाश स्वामी जी ने नहीं लिखा। और यह भी नहीं कहते कि उसमें का मांसादि प्रकरण अन्य पण्डितोंने घुसेड़ा होगा। क्योंकि उस जमानेमें न तो मैं था न और न उस विषय में कुछ जानता हूं। हां इतना लेखों द्वारा समझता हूं कि प्रथमावृत्ति का संशोधन करके दूसरी आवृति स्वामीजी ने अपने जीवनकाल ही में छपवायी थी, जिसका प्रमाण "सत्यार्थ-प्रकाश का चमत्कार" नामक ग्रन्थ में दियागया है, पाठक मंगाकर पढ़ें। उन्होंने प्रथमावृति से मांसादि प्रकरण निकालकर और प्रेस सम्बन्धी अनेक गलतियों को शुद्ध करके दुसरी आवृत्ति छपवाई है जो अबतक उनके मृत्यु के बाद छपती जारही है।

हम मान लेते हैं कि सन् १८७५ के सत्यार्थ में उक्त बात छपी हैं और स्वामीजी की लिखी हुई हैं पर स्वामीजी पर तो आक्षेप तब होता जब स्वामी के लेख में प्रमाण न होते। वे सब प्रमाण सनातनधर्म के ग्रन्थों के हैं फिर स्वामी पर आक्षेप करना कालूराम तथा उसके अनुयायी जगन्नाथदास की शरारत और चालबाज़ी क्या नहीं है?

सनातनधर्म का यह अब भी सर्वतंत्र सिद्धान्त है कि यज्ञ में जो पशु हिंसा होती है वह हिंसा नहीं है। मनुस्मृति पुराण सूत्रग्रन्थ हिंसामय यज्ञों से भरे पड़े हैं।

यज्ञार्थं पशवःसृष्टा स्वयमेव स्वयंभुवा।
यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः॥ मनु० ५-३९

यहां पर स्पष्ट यज्ञ में पशु मारने को लिखा है।

मद्यंमांसं मैथुनं च भूतानां ललनं स्मृतम्।
तदेव विधिना कुर्वन् स्वर्गं प्राप्नोति मानवः॥ वृ०स्मृ०॥

मद्यमांस और मैथुन ये तीनों प्राणियों को मोह में डालने वाले हैं परन्तु मनुष्य यदि इनका उपयोग विधि पूर्वक करता है तो वह स्वर्ग पाता है।

मधुपर्के चयज्ञे च पितृदैवत कर्मणि।
अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्य ब्रवीन्मनुः॥ मनु० ५-४२

मधुपर्क यज्ञ श्राद्ध और देवकार्य में पशुओं को मारना चाहिये दूसरी जगह नहीं ऐसा मनु कहते हैं।

अधिक कितना लिखें मनुस्मृति पंचमाध्याय पढ़ कर देख लो।

हविष्य मत्स्यमांसैश्च शशस्य नकुलस्य च।
सौकरच्छा गलैणेयरौरवैर्गवयेन च॥ १ ॥
औरभ्रगव्यैश्च तथा मांसवृध्या पितामहः॥
प्रयान्तितृप्तिं मांसैस्तु नित्यंवार्ध्रीणसामिषैः
विष्णु पुराण अंश ३ अध्याय १६

हविष्य, मछली खरगोश नेवला सूवर बकरा रुरुमृग नीलगाय औरभ्र और गाय के मांस से पितामह (पितर) लोग तृप्त होते हैं।

अष्टकायज्ञ में गाय के मांस से हवन करने का विधान गोमिलादि गृह्यसूत्रों तथा पुराणों में भरे पड़े हैं।

तैष्या उदुर्ध्वमष्टम्यांगौः। तां सन्धि बेलासमीपं पुरस्ताद् ग्नेरवस्थाप्यो पस्थितायां जुहुयाद्यत्पशवःप्रध्यायतेति॥ पौषमास की पूर्णिमा के पीछे अष्टमी तिथिको गोमांस द्वारा मांसाष्ट का करे। सन्धिवेला के कुछ पहले अग्नि के पूर्वभाग में उस गौ को लारखे पीछे सन्धि वेला होने पर "यत्पशवः प्रध्यायत" इस मंत्र से घीकी आहुती देकर कार्यारंभ करे इसके आगे के सूत्रों में गौ को प्रोक्षण करके मार कर होम करने के लिये लिखा है। गो० गृ० सूत्र प्र० ३ खं० १० सू० १४—२५

इस तरह सैकड़ों प्रमाण सनातनधर्म की पुस्तकों में मौजूद है इन्हें पढ़ कर स्वामीजी की उसी प्रकार विश्वास होगया होगा जैसे आजकल के सनातनी पण्डितों को अब भी विश्वास है और उन्होंने १८७५ के सत्यार्थ प्रकाश में यज्ञ प्रकरण में लिख दिया होगा तो व्यक्तिगत उन पर आक्षेप क्यों? क्या लेखक बतला सकता है कि ये सनातन धर्म के शास्त्र नहीं? यदि सनातनधर्म के शास्त्र हैं, तो स्वामी पर आक्षेप कैसा? उन्होंने मनमानी तो नहीं लिख दी थी? भला लेखक से बढ़कर मूर्ख कौन हो समझ सकता है जो अपने

शास्त्रों के वचनों को ही अधर्म युक्त इस लिये बतलावे कि एक महात्मा के ऊपर द्वेषवश उसे आक्षेप करना है।

जब स्वामीजी को यह विश्वास हुआ कि ये बातें यद्यपि मनु और सूत्रादि शास्त्रोंमें वर्णित है तथापि वेद विरुद्ध है अतः वाममार्गियों के प्रक्षेप हैं तो उन्होंने दूसरी आवृत्ति में निकाल दिया। जिन आक्षेपों को लाला साहब ने स्वामी के सिर मढ़ा था, वे सब आक्षेप स्वामी पर से हटे किन्तु सनातनधर्म के शास्त्रों पर आगये। जिनमें ऐसी सैकड़ों अनर्गल बातें भरी हुई हैं।

क्या सनातनधर्म के शास्त्रों को बनाने वाले इस मूर्ख लेखक के कथनानुसार भ्रान्तबुद्धि वाले थे? अथवा किसी द्वेष की प्रेरणा से उन्होंने लिखा है? यदि लेखक भ्रान्त द्वेषी, अधर्मी किसी को इस मांस विषयक लेख के लिये कह सकता है तो अपने शास्त्रकारों को पुराण लेखकों को, न कि स्वामीजी को, जिन्होंने उन्हीं के वचनों का उद्धरण मात्र कर दियो था।

आपने संस्कार विधि मुद्रित संम्वत् १९३३ से पुनः मांस प्रकरण उठाकर, स्वामीजी पर आक्षेप किया है। यह भी लेखक की मूर्खता का एक ज्वलन्त प्रमाण है।

इसका भी उत्तर वही है जो पहले दिया जा चुका है। लेखक बेचारा अपने धर्म ग्रन्थों को यदि पढ़ा होता तो स्वामी पर आक्षेप न करता। बेचारा करे तो क्या करे—काबू-

राम की नाद में पड़ गया। इसे से येनकेन प्रकारेण नाम कमाने का शौक लग गया। बिच्छू का मंत्र न जाने सांप के बिल में हाथ डाले, ठीक यही कहावत लेखक पर चरितार्थ होती है। बेचारे को संस्कृत साहित्य का ज्ञान नहीं, पड़ गया कालूराम के पाखण्ड में, झट कलम उठा कर स्वामी पर आक्षेप कर बैठा और सनातन धर्म का ठोकेदार बन गया। लालाजी देखो बकरे या तीतर का मांस स्वामी का मनगढ़न्त नहीं हैं जो उन पर आक्षेप करते हो यह आज्ञा तो आश्वलायन गृह्यसूत्र की है:—देखो षोडशी काण्डिका सूत्र २।३ अजा मन्नाद्यकामः॥ २॥ तैत्तिरं ब्रह्मवर्चसकामः॥

क्या तुम बतला सकते हो कि तुम्हारे सूत्रकार आश्वलायन भ्रान्त बुद्धि के थे जिन्होंने बकरे और तीतर के मांस को खाना लिखा? यदि नहीं तो स्वामीजी पर आक्षेप करना क्या आपकी भलमसाहत है।

इसको भी प्रक्षिप्त मान कर स्वामीजी ने आगे के संस्करण में सुधार कर दिया, परन्तु तुम लोग अभी तक उसे मानते ही हो फिर आक्षेप तो उलटे तुम पर आता है। तुम स्वामीजी को क्यों कोसते हो, क्या यह तुम्हारी नीच मनो वृत्ति का ज्वलन्त उदाहरण नहीं है?

आप पुनः आक्षेप करते हैं—पृष्ठ ४१ में लिखा है कि गर्भ धारण से चतुर्थ महीने में निष्क्रमण संस्कार करे किंवा इसके पूर्व भी यथा योग्य देखे तो करे—बालक को

वस्त्र पहना कर शुद्ध देश में फिरावे इति ॥ इतना उद्धरण देकर लेखक कहता है कि स्वामीजीका गर्भमें स्थित बालकको वस्त्र पहना कर घुमाना महा असंभव है।

उत्तर-ठीक है, इसे तो एक छोटा सा बच्चा भी असंभव बतला देगा। यह तो संशोधन की असावधानी का परिणाम है। इस पर से स्वामी पर आक्षेप करना विद्वानों में अपनी मूर्खता प्रकट करना है। इसी प्रकार आगे भी प्रूफ संशोधन की गलतियां हैं जो दूसरी आवृत्ति में ठीक करदी गई। छापे की गलतियों से लाभ उठा कर किसी विद्वान पर कटाक्ष करना नीचता है। जिसको स्वामीजी ने स्वयं काट छांट ठीक कर दिया उस पर आक्षेप कैसा ?

स्वामीजी की बुद्धि का संसार लोहा मान गया है ऐसे ऐसे गीदड़ों के चिल्लाने से स्वामीजी को कोई विद्वान् बेवकूफ नहीं कह सकता। कुत्ते भूंकते ही रहते हैं। हाथी मस्त हो कर चला ही जाता है।

आगे नियोग का विषय लेकर लिखा है कि पर पुरुष का पर स्त्री के साथ समागम ही व्यभिचार है। स्वामीजी ने नियोग चला कर व्यभिचार बढ़ाया है।

उत्तर—स्वामीजी अपने मन से नियोग विषय को उत्पन्न नहीं किया है किन्तु तुम्हारे बाप दादे बराबर करते आये हैं उसको स्वामी ने अपने सत्यार्थ प्रकाश में स्थान दिया देखो याज्ञवल्क्य स्मृति आचाराध्याय।

अपुत्रां गुर्वनुज्ञातो देवरः पुत्रकाम्यया ।
सपिण्डोवा सगोत्रोवा घृताभ्यक्त ऋतौ वियात् ॥
आगर्भसंभवाद्गच्छेत् पतितस्त्वन्यथा भवेत् ।
अनेन विधिना जातः क्षेत्रजोऽस्य भवेत्सुतः ॥

गुरु जनों की आज्ञा लेकर पुत्र की इच्छा से सपिण्ड अथवा सगोत्र देवर शरीर में घृत पोतकर ऋतुकाल में अपुत्रा स्त्री के पास जावे। जब तक गर्भ न हो तब तक उसके पास जावे, इसके विरुद्धाचरण करने से पतित होता है इस प्रकार से उत्पन्न किया हुआ पुत्र क्षेत्रज कहलाता है। मिताक्षराने अपनी टीका में मनु का भी प्रमाण उद्धृत किया है। यथाः—

यस्याः म्रियेत कन्यायाः वाचा सत्येकृते पतिः। तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः॥ क्या मनु और याज्ञवल्क्य व्यभिचार फैलाने के लिये नियोग विधि लिखी है। अब नियोग का उदाहरण भी लीजिये।

सत्यवती भीष्म से कहती है:

भ्रातुर्भार्यां गृहाणत्वं वंशं च परिरक्षय।
यथा न नाशमायाति ययातेर्वंश इत्युत॥

हे भीष्म, तुम अपने भाई की स्त्री को गृहण करो और वंश की रक्षा करो जिस प्रकार ययाति के वंश का नाश न हो

भीष्म ने कहा कि कुलीनद्विज बुलाकर वधू से नियुक्त कराओ इसमें कुछ दोष नहीं है।

नात्र दोषोस्ति वेदेपि कुल रक्षा विधौकिल ॥

सत्यवती ने व्यास को बुलाकर नियोग करने को कहा

व्यासः श्रुत्वा वचो मातुराप्तवाक्यममन्यत ।
ओमित्युक्त्वा स्थितस्तत्र ऋतुकालमचिन्तयन् ॥
अम्बिका च यदास्नाता नारी ऋतुमतीतदा ।
संगं प्राप्य मुनेः पुत्रमसूतान्धं महाबलम् ॥
ऋतु काले तु संप्राप्ते व्यासेन सह संगता ।
तथा चाम्बालिका रात्रौ गर्भं नारी दधारसा ॥
तस्याश्च विदुरो जातः दास्यां धर्मांशतः शुभः ॥

व्यासने माता की बात मान कर ऋतु प्राप्त होने पर अम्बिका और अम्बालिका तथा दासी के साथ नियोग किया जिससे धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर पैदा हुये।

पाण्डु ने अपनी स्त्री माद्री और कुन्ती को स्वयं नियोग करने को कहा, जिस नियोग से पंच पाण्डव पैदा हुये

राजाबलि ने अपनी पत्नी सुदेष्णा को दीर्घतमा के पास भेजा जिससे बालेय ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनो हुए क्या ये सब वर्ण संकर हुये थे।

सूर्य वंशी राजा कल्माष पादकी स्त्री मदयन्ती के साथ वशिष्ठने नियोग किया जिससे आगे सूर्य वंश चला, क्या सूर्य वंश को वर्ण संकर मानते हो ?

वसिष्ठाश्चा पुत्रेण राज्ञा पुत्रा र्थ मभ्यर्थितो मदयन्त्यां गर्भाधानं चकार ॥ वि० पु० ॥

और तो क्या कहें तुम्हारे शिवजी ने भी नियोग किया था। मानुष्यां गर्गभार्यायां नियोगाच्छूलपाणिनः।

सकाल यवनो नाम जज्ञे शूरो महाबलः ॥ब्र०पु० ॥

गर्ग की भार्या मानुषी में शूलपाणि शिव ने नियोग किया जिससे कालयवन पैदा हुआ। क्या तुम्हारे शिवजी व्यभिचारी थे?

दीर्घतमा ने सुदेष्णा की दासी से नियोग करके कक्षीवान को उत्पन्न किया था। क्या कक्षीवान् ऋषि वर्ण संकर थे? बिना समझे बूझे नियोग पर आक्षेप करना अपने पूर्वजों को वर्ण संकर बनाना है क्या आप इसे मानने को तैयार हो?

आज कल देश काल के अनुसार नियोग भले ही अनुचित हो, परन्तु पूर्वकाल में हमारे पूर्वज वंश की रक्षा के लिये उसे धर्म समझ कर करते थे। फिर नियोग पर आक्षेप करके अपने पूर्वजों को वर्ण संकर क्यों कहते हो? क्या तुम वर्ण संकरता के दोष से बच सकते हो?

आगे आपने यह आक्षेप किया है कि स्वामी ने गर्भवती से भोग करने को लिखा है,

उत्तर—यदि उल्लू को सूर्य प्रकाश में भी न सूझे तो सूर्य का क्या दोष है? प्रश्न कर्त्ता को स्वामी का लेख समझ में न आवे तो स्वामी का क्या दोष? भला जिस स्वामी का यह सिद्धान्त हो कि जब महीने भर में रजस्वला न होने से गर्भस्थिति का निश्चय हो जाय, तब से एक वर्ष पर्यन्त

स्त्री पुरुष का समागम कभी न होना चाहिये (स० प्र० पृ० ६४) वह गर्भवती से समागम करने के कैसे लिखेगा ? किसी कवि ने ठीक कहा है।

प्रायः प्रकाशतां याति मलिनः साधु वादया।
नाग्रसिष्यत चेदर्कं को ज्ञास्यत् सिंहका सुतम् ॥

मलिन हृदय के लोग सज्जनों की निन्दा करके प्रायः अपना नाम पैदा करते हैं। यदि राहु सूर्य को नहीं निगलता तो उसका नाम कौन जानता ?

ठीक यही दशा आप की है। आपने समझा कि स्वामी दयानन्द सरीखे विद्वान के लेख पर कुछ लिख देने से, और कुछ नहीं तो नाम तो हो ही जायगा कि मुरादाबादी जगन्नाथ दास कोई .कालूराम का भाई है। पाठको स्वामीजी का लेख यह है:—

गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के समय में पुरुष से वा दीर्घ रोगी पुरुष की स्त्री से न रहा जाय तो किसी से नियोग करके पुत्रोत्पत्ति करले परन्तु वेश्या गमन व्यभिचारादि न करे" इनसे पूछना चाहिये कि इसमें गर्भवती से समागम करने को कहां लिखा है। यदि कहो पुराने सत्यार्थ प्रकाश सन् १८७५ में है तो क्या पुस्तक में गलती नहीं छप जाती, छापे की गलती से लाभ उठा कर किसी महात्मा पर आक्षेप करना तुम्हारी नीचता नहीं तो क्या है ? इस लिये स्वामीजी तो महर्षि हैं, हां आपके यहां गर्भवती

स्त्री से भोग करने वाला महर्षि तो क्या, देवताओं का गुरु होता है। जन्मना आप में वही संस्कार पड़ा है तभी आप झूठा आक्षेप करते हैं। बृहस्पति के छोटे भाई उतथ्य की स्त्री गर्भवती थी। बृहस्पति जी जबदस्ती उस पर चढ़ बैठे। और भारद्वाज निकल पड़े जो अखिलानन्द के पूर्वज हैं। और ब्राह्मण क्षत्रिय दोनों के वंश के प्रवर्तक हैं। देखो मत्स्य पुराण। कहिये अब भी कुछ शंका है?

आप लिखते हैं:—

सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है विवाहिता स्त्री का पति धर्म के लिये परदेश गया हो तो आठ वर्ष, विद्या और कीर्ति के लिये गया हो तो छः धनादि काम के लिये गया हो तो तीन वर्ष तक राह देखकर पश्चात् वह नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर ले॥

इतना लिख कर आप लिखते हैं कि स्वामीजी ने ऐसी आज्ञा देकर व्यभिचार फैलाया है।

उत्तर—यह मनुस्मृति के आधार से स्वामीजी ने लिखा है। जो तुम्हें व्यभिचार सूझता है। ठीक ही है, व्यभिचारी को सर्वत्र व्यभिचार ही सूझता है। यदि कालूराम और अखिलानन्द के अन्ध भक्त न होते और शास्त्रों का अनुशीलन किये होते तो आक्षेप न किये होते, चुपचाप स्वामी की बात हित कर समझ कर मान लेते।

नियोग आपद् धर्म है। मनुजी लिखते हैं—अतः परं प्रवक्ष्यामि योषितां धर्ममापदि। अ० ६ श्लोक ५६॥

इसके आगे अब मैं स्त्रियों का आपद्धर्म वर्णन करूंगा यह मनु की प्रतिज्ञा मनुके "प्रोषितो" इस ७६ श्लोक के पूर्व के दोनों श्लोकों को पढ़ो तो समझ में आ जायगा कि स्वामी का लिखना कितना ठीक है।

विधायवृत्तिं भार्यायाः प्रवसेत्कार्यवान्नरः।
अवृत्तिकर्षिताहिस्त्री प्रदुष्येत्स्थितिमत्यपि ॥७४॥
विधाय प्रोषितेवृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता।
प्रोषिते त्वविधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितैः॥

अर्थ—काम पड़ने पर मनुष्य स्त्री के लिये जीविका का प्रबन्ध करके परदेश जावे क्योंकि जीविका के अभाव में शीलवती स्त्री भी दूषित हो जाती है जीविका का प्रबन्ध करके पति के देशांतर जाने पर नियम में स्थित होकर रहे और यदि जीविका का प्रबन्ध न करके चला गया हो तो अनिन्दित शिल्प से जीविका चलावे।

अब इसके आगे का श्लोक है जिसे स्वामी जी ने प्रमाण में दिया है। जिसमें क्रिया पद नहीं है। प्रश्न यह है कि कोनसा क्रियापद प्रकरणानुगत यहाँ पर लग सकता है। "पति के पास चली जाय" यह क्रियापद लगाओगे तो व्यर्थ होगा क्योंकि पति के देशान्तर जाने पर जीविका के लिये लिख ही दिया। यदि कहो कि वृत्ति से जीविका न चल

सकती हो तब वह क्या करे ? ऐसी दशा में उसका पति के पास जाना जरूरी है ; प्रश्न यह है कि ऐसी दशा में दुसरे तीसरे वर्ष में भी तो जा सकती है फिर ८ वर्ष की अवधि क्यों ? और यदि पता ही न हो तो वह कहां जावेगी ? यदि कहो कि वसिष्ट के इस वचन से "प्रोषितपत्नी पंचवर्षाणि उपासीत" तदूर्ध्वं पतिसकाशं गच्छेत्" पति के पास जाना सिद्ध है तब तो यही कहना पड़ेगा कि कहीं का ईंट कहां का रोड़ा, भानमती ने कुनवा जोड़ा। परन्तु भगवन् इससे भी जान न बचेगी। उसके आगे का पाठ देखिये।

यदि धर्मार्थाभ्यां प्रवासं प्रत्यनुकामा न स्यात् यथा प्रेत एवं वर्तितव्यं स्यात् ॥ ६८ ॥

एवं ब्राह्मणी पंचप्रजाताऽप्रजाता चत्वारि राजन्या प्रजाता पंच अप्रजाता त्रीणि वैश्या प्रजाता चत्वारि अप्रजाता द्वे शूद्रा प्रजाता त्रीणि अप्रजाता एकम् ॥ ६९ ॥

अत ऊर्ध्वं समानोदकपिण्डजन्मर्षि गोत्राणां पूर्वः पूर्वः गरीयान् ॥ ७० ॥ न तु खलु कुलीने विद्यमाने परगामिनी स्यात् ॥ ७१ ॥

यदि धर्म और अर्थ के लिये पति के पास जाने की इच्छा न हो तो जैसे मरने पर करते हैं वैसा इस प्रकार वर्ताव करे। प्रसूता ब्राह्मणी पाँच वर्ष अप्रसूता ४ वर्ष तक, क्षत्रिया प्रसूता पाँच वर्ष अप्रसूता ३ वर्ष, वैश्या प्रसूता चार वर्ष अप्रसूता २ वर्ष, शूद्रा प्रसूता तीन वर्ष अप्रसूता १ वर्ष तक ठहरे

इसके बाद समानोदकपिण्ड जन्म ऋषि गोत्रों में से पहले पहले श्रेष्ठ समझे जाय। कुलीन के वर्तमान रहने पर अकु-लीन दूसरे के पास न जावे अर्थात् कुलीन के पास ही जावे। इसकी पुष्टि नारद करते हैं—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।
पंचस्वापत्सु नारीणां पति रन्यो विधीयते॥
अष्टौवर्षाणि उदीक्षेत ब्राह्मणी प्रोषितं पतिम्।
अप्रसूता तु चत्वारि परतोऽन्यं समाश्रयेत् ॥९८॥
क्षत्रियाषट् समासितष्ठेत् अप्रसूतासमात्रयम्।
वैश्याप्रसूताचत्वारि द्वे वर्षे त्वितरावसेत्॥
न शूद्रायाः स्मृतः कालः एषप्रोषितयोषिताम्।
जीवति श्रूयमाणेतुस्यादेषः द्विगुणः विधिः ॥१००॥
अप्रवृत्तो तु भूतानां दृष्टिरेषा प्रजापतेः।
अतोन्य गमने स्त्रीणामेष दोषो न विद्यते॥

स्वामी के देशान्तर चले जाने पर, मर जाने पर सन्यास ले लेने पर नपुंसक हो जाने पर, पतित हो जाने पर स्त्रियों का पत्यन्तर शास्त्र विहित है। ऐसी दशा में ब्राह्मण जाति की स्त्री आठ वर्ष तक प्रतीक्षा करे परन्तु यदि सन्तान हीन हो तो ४ वर्ष तक प्रतीक्षा करे इसके बाद दूसरे का आश्रय ले ले। क्षत्रिय जाति की स्त्री ६ वर्ष तक प्रतीक्षा करे, यदि सन्तान न हो वह ३ वर्ष तक। वैश्य जाति की स्त्री यदि सन्तान हो तो ४ वर्ष तक, यदि सन्तान न हो तो दो वर्ष

तक । शूद्र जाति की स्त्री के लिये प्रतीक्षा काल का नियम नहीं है। यदि यह सुनाई दे कि पति जीवित है तो पूर्व कहे काल से दुगुने काल तक प्रतीक्षा करनी चाहिये । प्रजापति ब्रह्मा का यही सिद्धान्त है इस लिये ऐसी दशा में पत्यन्तर करने में स्त्रियों को कोई दोष नहीं है।

बतलाइये लालाजो, स्वामी जी का कथन ठीक है या नहीं? यदि कहो यह तो पुनर्विवाह का प्रतिपादक है तो यह भी हम मानने को तैयार हैं। आप पुनर्विवाह ही मान लें। रह गया नियोग वह भी शास्त्र सम्मत ही है। इसका प्रमाण पीछे आ चुका है।

सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ८८ में लिखा है कि मुखादि अङ्गों से ब्राह्मणादि उत्पन्न होते तो उन्हीं के समान आकृति होती इत्यादि—इस पर आपका वही एतराज है जो प्रायः सबको मालूम है—

उत्तर—स्वामीजी ने ठीक लिखा है। समझ में न आवे तो कोई क्या करे। जैसे गाय बकरी से पैदा होने वाले गाय बकरी के आकार के होते हैं मनुष्य से पैदा होने वाले मनुष्य के आकार के होते हैं ऐसे ही मुख रूप माता से पैदा होने वालों को मुख के आकार का होना ही चाहिये। यही स्वामी जी का भाव है। किसीके भाव को द्वेष वश तोड़ मड़ोर कर आक्षेप करना सज्जनों का कार्य नहीं है—

यदि ब्राह्मणादि मुख से पैदा हुये तो क्या कोई सनातन

धर्मी उन उन ऋषियों का नाम वतला सकता है जो प्रथम प्रथम मुख से पैदा हुये। १००८० का चैलेंज है कि कोई भी उत्तर दे। बेचारा लेखक क्या देगा जो दूसरों की आंख से देखता है।

प्रश्न—जो कि किसी को एकही पुत्र वा पुत्री हो, वह दूसरे वर्ण में प्रविष्ट हो जाय तो उसके मा बाप की सेवा कौन करेगा? उत्तर—उनको अपने लड़के और लड़कियों के बदले स्ववर्ण से योग्य दूसरे सन्तान विद्या सभा और राज सभा की व्यवस्था से मिलेंगे। इस पर लालाजी की टिप्पणी है कि ऐसा लिखना बुद्धि की भ्रान्ति का प्रताप है अथवा किसी देवता कोप है।

उत्तर—तुम्हारे देवता बेचारे तो स्वयं ग़रों के मुहताज हैं वे दूसरों को शाप क्या देंगे। रह गई बात स्वामी की बुद्धि की भ्रान्ति की। यह भी आपकी विकृत बुद्धि का परिणाम है। स्वामीजी ने जो राय दी है वह पूर्व काल के पूर्वजों के नियम के अनुकूल है। तुम अपना इतिहास न पढ़ो तो यह तुम्हारा अपराध है। आर्यों में पहले ऐसा होता था। कहीं गड़बड़ी न होती थी। शतानन्द क्षत्रियवंश में ऋषिवंश से कैसे गये? मुद्गल क्षत्रिय के पुत्र मौद्गल्य तथा कण्वादि क्षत्रिय वंश से अंगिरस पक्ष में कैसे गये? वर्तमान ब्राह्मण वंश क्या ब्रह्मा के मुख से है? नहीं नहीं नहीं, कभी नहीं, कदापि नहीं, प्रमाणा भाव है। सबके सब क्षत्रिय वंश से निकले हैं। ये

बातें कैसे हुई ? वे क्यों दूसरे वंश में चले गये ? यदि कहो कि उनके स्थान में दूसरे वंश से तो नहीं न गया ? तो उत्तर यह है कि वहां जरूरत न थी । यह तो आवश्यकता पर निर्भर है।

आज कल भी एक आदमी अपनी सेवा शुश्रुषा के लिये तथा अपना वारिस बनाने के लिये दूसरे का पुत्र लेता ही है। व्यवस्था तो किसी न किसी रूप में अब भी चल रही है फिर आपको आक्षेप करने की क्या आवश्यकता थी । ऐसा मौका तो आया नहीं, न राज सभा ने ऐसी कोई व्यवस्था की फिर केवल राय जाहिर कर देने पर स्वामीजी को क्यों अप शब्द कहने लगे। क्या तुम लोगों को गाली बकने का रोग लग गया है।

हर एक आदमी को अपनी राय प्रकट करने का अधिकार है, मानना न माना जनता के हाथ में हैं । यदि जनता देश काल की परिस्थिति के अनुसार उसे उचित समझेगी, मानेगी, यदि देश काल उसे न करने को बाध्य करेगी तो वह न करेगी। पर राय देने वाला कैसे अपराधी हो सकता है। यह बात समझ में नहीं आती।

प्रश्न—"उत्तम स्त्री सब देश तथा सब मनुष्यों से ग्रहण करे ऐसा ६७ पृष्ठ में स्वामीजी ने लिखा है इससे तो मुसलमान ईसाई तो क्या चमार भंगी तक की कन्या दयानन्द के मत में विहित है। बुद्धि की भ्रान्ति ने स्वामी का सारा ज्ञान हर

लिया जिससे उन्होंने सब देश और सब मनुष्यों से उत्तम स्त्री ग्रहण करने का उपदेश दिया।

उत्तर—जिसका मन पक्षपात से मलिन होता है उसको उचित अनुचित का कुछ भी विचार नहीं होता। लेखक का हृदय इतना गन्दा है कि उसे लिखा हुआ भी नहीं सूझता। यदि लेखक संस्कृत जानता होता तो मनु के श्लोक को जो वहां ही दिया हुआ है, देख कर स्वामी पर आक्षेप करने का विचार ही नहीं करता। स्वामी ने वहीं पर मनु का श्लोक देकर उसका अनुवाद हिन्दी में कर दिया है।

यथाः—

स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या सत्यं शौचं सुभाषितम्।
विविधानिच शिल्पानि समादेयानि सर्वतः॥

स्त्री, रत्न विद्या, सत्य शौच सुभाषित अनेक प्रकार के शिल्प इन्हें सब स्थान से ले लेना चाहिये।

लेखक ही बतलावे कि मनु की बुद्धि क्या भ्रान्त थी। जब मनु ने ही सब स्थान से स्त्री रत्न आदि को लेने को लिखा है तो स्वामी ने सत्यार्थ प्रकाश में उसी को लिख दिया तो क्या बेजा किया? आक्षेप की क्या आवश्यकता थी?

प्रश्न—स्वामी ने मूर्तिपूजा छुड़वा कर पीठ की हाड़ में ईश्वर की उपासना कराई धन्य! यह भी स्वामी की बुद्धि की भ्रान्ति है इत्यादि।

उत्तर—मूर्ति पूजा वेद में कहीं नहीं, यदि हो तो मंत्र

देकर पुष्टि करो व्यर्थ में जनता को पाखण्ड में फँसाना पाप है। स्वामीजी ने जो धारणा के लिये स्थान बतलाया है वह उनकी बुद्धि की भ्रान्ति नहीं है। तुम या तुम्हारे गुरू कालूराम पुराण पढ़े होते तो इस प्रकार नालायकी पर कमर कस कर अपनी अशराफियत का परिचय न देते। देखो देवी भागवत अ० ३५ स्कन्ध ७ में वही बात लिखी है जिसे स्वामीजी ने लिखा है:—

अंगुष्ठ गुल्फ जानूरू मूलाधारलिंगनाभिषु।
हृद्ग्रीवा कण्ठ देशेषु लम्बिकायां ततोनसि॥
भ्रूमध्ये मस्तके मूर्ध्नि द्वादशान्ते यथाविधि।
धारणं प्राण मरुतो धारणेति निगद्यते॥

अंगुष्ठ गुल्फ, जानु उरु मूलाधार, लिंग नाभि भ्रूमध्य मस्तक मूर्धा इन १२ स्थानों पर प्राण का निरोध किया जाता है इसी का नाम धारणा है।

पाखण्डी बाबा के चेले, निरक्षर भट्टाचार्य लालाजी कहिये आपके पुराण कर्त्ता की भी बुद्धि क्या भ्रान्त थी जिन्होंने नाभि आदि देश में प्राण का निरोध करने को लिखा? चिल्लू भर पानी में कालूराम के साथ डूब मरो जिसने तुम्हें बहका कर स्वामीजी पर आक्षेप करने को उसकाया।

प्रश्न—सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि ईश्वर त्रिकाल दर्शी नहीं है प्रत्युत आर्याभिविनय में उसे त्रिकाल दर्शी

लिखा है परस्पर दो विरुद्ध लेखों में अवश्य एक जगह उनकी मूर्खता है।

उत्तर—लेखक ने स्वामीजी के लेख का एक टुकड़ा देकर अर्थ का अनर्थ किया है। इतना नहीं सोच लिया कि जब पाखण्ड का पर्दा कोई फाड़ देगा तो मुंह छिपाने को स्थान न मिलेगा। स्वामीजी लिखते हैं ईश्वर को त्रिकाल दर्शी कहना मूर्खता है क्यों कि जो होकर न रहे वह भूत और न होके होवे वह भविष्यत काल कहलाता है क्या ईश्वर को कोई ज्ञान होकर के नहीं रहता तथा न होके होता है इस लिये परमेश्वर का ज्ञान सदा एक रस अखण्डित वर्तमान रहता है। हां जीवों के कर्म की अपेक्षा से त्रिकालज्ञता ईश्वर में है स्वतः नहीं।

पाठक, देखिये स्वामीजी का लेख कैसा स्पष्ट है। किसी के समझ में न आवे तो कोई क्या करे। वे स्पष्ट लिख रहे हैं कि भूत भविष्य का प्रयोग जीव के लिये होता है इस लिये जीवों के कर्म की अपेक्षा से ईश्वर में त्रिकालज्ञता है परन्तु चूंकि वह सदा एक रस अखण्डित वर्तमान रहता है उसके लिये भूत भविष्य है ही नहीं इस लिये स्वतः उसमें त्रिकालज्ञता नहीं है जीवों की अपेक्षा से है। आर्याभिविनय में ईश्वर में त्रिकालज्ञता जीवों के कर्म की अपेक्षा से माना है जैसा यहां सत्यार्थ प्रकाश में माना है, फिर लेखों में विरोध

कहां रहा ? ऐसी दशा में स्वामी पर आक्षेप करना नीचता नहीं तो क्या है।

यदि दुराग्रह से तुम यही कहो कि, हमारी समझ में तो यही आता है कि स्वामीजी ने ईश्वर को त्रिकाल दर्शी नहीं माना है, तब मुझे लाचार होकर कहना पड़ेगा कि तुम्हारी बुद्धि अपने गुरु कालूराम शास्त्री के समान पुराण पढ़ते पढ़ते भ्रष्ट हो गई है जिसमें शिव विष्णु को भूत भविष्य तो छोड़ दीजिये, वर्तमान का काल के ज्ञान का भी अभाव लिखा है।

देखो पदुम पुराण उत्तर खण्ड अ० १६।

जलन्धर ने माया की गौरी निर्माण करके उससे कहा कि तू रुद्र के आगे जाकर उन्हें मोहले। उसकी आज्ञा से, वह माया की गौरी शिव के पास जाकर रोने लगी। पूछने पर गौरी ने कहा कि जलन्धर पार्वती को पर्वत से उठा लाया है। यह सुन कर शिव ने उसे अपने बैल पर आने के लिये कहा। वह आई और शिवको आलिंगन करके बोली। मैं पार्वती के विना नहीं रह सकती हूं ऐसा कह कर वह चली गई। इसी बीच में शंकर ने पार्वती को जलन्धर के रथ पर बैठे देखा। शिव भी पार्वती को देख कर विलाप करने लगे तब जलन्धर ने कहा:—

सर्वं प्रमाण शून्योसि, स्मर शृङ्गार वर्जितः।
ईश्वरोपि वराकस्त्वं संजातोम्बिकया विना॥

मा रुदिहि विरूपाक्ष, ददामि तव वल्लभाम् ।
रक्षितोसि मया रुद्र, गृहीत्वा पार्वती रथात् ॥

ऐसा कह कर पार्वती को रथ से उतार कर शंकर के सामने अपनी सेना भेजी। उधर शंकर पार्वती को लेने के लिये सेना के साथ स्वयं गये। ज्योंही उसे पकड़ने लगे त्योंही पार्वती को पकड़ कर शुंभ आकाश में उड़ गया शिव ने उसे मारने को शूल फेंका वह शूल पार्वती पर गिरा जिससे वह मर गई।

मायां गौरीं मृतां दृष्ट्वा शोक मोह परिप्लुतः।
हा प्रिये रुदन् रुद्रः पपात भूवि मूर्छितः ॥

माया गौरी को मरी हुई देख कर शिव शोक और मोह से व्याप्त हो गये। हाय प्यारी हाय प्यारी कह कर रोने लगे और मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़े। क्षण मात्र में जाग कर विलाप करने लगे तब विष्णु ने आकर कहा कि यह तुम्हारी प्रिया नहीं, यह तो मायामयी जलन्धर निर्मित गौरी है।

अब विष्णु का हाल सुनिये। विष्णु स्वयं अपने मुंह से अपनी अज्ञानता प्रकट करते हैं:—

नाहं नारद जानामि पारं परं दुर्घरम्।
गुणानां किल मायायाः नैव शंभुर्न पद्मजः ॥
कोन्यो ज्ञातुं समर्थो भून् मानतो मन्दधीः पुनः॥
माया गुण परिज्ञानं न कस्यापि भवेदिह ॥

हे नारद माया के गुणों का पार न तो मैं जानता हूं न शिव न ब्रह्मा, फिर कौन दूसरा जान सकता है। इस संसार में माया के गुणों का ज्ञान किसी को नहीं होता—

ऐसे ही एक दो नहीं, सैकड़ों स्थान पर ब्रह्मा विष्णु शिव को जो आपके ईश्वर है, पुराणकारों ने अज्ञ बतलाया है। इन्हीं बातों को पढ़ते पढ़ते लेखक के दिमाग में फतूर आगया है इसी लिये स्वामी जी के लेख के अर्थ का अनर्थ करता है।

पृष्ठ १२ में संशोधन की असावधानी से गलत छपे हुये वाक्यों से लाभ उठा कर स्वामी जी पर आक्षेप किया है जो लेखक का पक्षपात है। वर्तमान सत्यार्थ प्रकाश में उन वाक्यों का कहीं गन्ध नहीं। अतः उत्तर के लिये कलम उठाना समय को बरबाद करना है।

आगे पृ० १३ में लिखा है कि स्वामी जी ने चोटी कटाने के लिये लिख कर अपनी विभ्रान्त बुद्धि का सम्यक् परिचय दिया है। यह भी लेखक की मूर्खता और शास्त्रों के अनध्याय का परिणाम है। आखिर शास्त्र की डींग मारने वाले कालूराम के शिष्य ही तो ठहरे। स्वामी जी ने वही लिखा है जो धर्म शास्त्र बतलाते हैं। देखो गोभिल गृह्य सूत्र चूड़ाकरण और गोदान विधि।

"उदगग्नेरुत्सृप्य कुशलीकारयन्ति" (प्र० २ खं० ६ सू०

२५—२६) इस सूत्र पर सत्यव्रत सामश्रमी का भाष्य देखें—

अग्नेः "उदक्" उत्तरस्मिन् उत्सृप्य उत्सर्पणेनोपविश्य यथा गोत्रकुलकल्पं गोत्रकुलानुरूपं सशिखं शिखाशून्यं वा पंच चूडं वा (तथाच—वासिष्ठाः पंच चूडाः स्युः त्रिचूडाः कुण्डपायिनः" किंच "सशिखंवपनं कार्यमाम्नायाद् ब्रह्मचारिणाम्। आशरीर विमोक्षाय ब्रह्मचर्य्यं नचेद् भवेद् इति एवं च वसिष्ठ गोत्राणां पंचचूडं मुण्डनं कुण्डपायिनां त्रिचूडं मुण्डनं कौथुमानां आसमावर्तनात् सशिखं वपनंचेति) इत्यादि भाषा—इस प्रकार दोनो कपुष्णिका काटे जाने पर बालक वहां से हट कर अग्नि के उत्तर भाग में वैठे और आत्मीय लोग नापित से गोत्र कुलानुसार पांच या तीन शिखारहित या शिखासहित मुण्डन करवावे। इत्यादि

अब आगे ब्रह्मचर्य्य समाप्त होने पर उपनयन से १६ वें वर्ष में जब समावर्तन संस्कार होता है उस समय भी यही चूड़ा कर्म की विधि वर्ती जाती है। यथाः—तृतीय प्रपाठक गो॰गृ॰ सू॰ अर्थात् षोडशे वर्षे गोदानम् ॥ १ ॥ चूड़ाकरणेन केशान्त करणं व्याख्यातम् ॥ २ ॥ भावार्थ—उपनयन के १६ वें वर्ष में गोदान (मुण्डन) करे। इस समय जो केश कटाना पड़ता है वह पूर्वोक्त चूड़ा कर्म के नियमानुकूल होगा। ब्रह्मचारी जिस समय केश कटावे उस समय शरीर के सब अंगों के लोम को कटा देवे यथाः—

ब्रह्मचारी केशान्तान् कारयते सर्वाणि अंगलोमानि संहारयते ॥ ३, ४ भाष्य-ब्रह्मचारी ब्रह्मवेदः तद्ग्रहणाचार-विशिष्टः आद्याश्रमी यदैव केशान्तान् कारयते तदैव सर्वाणि अंगलोमानि संहारयते कक्षवक्षो पस्थ शिखा केशानपिवापये दित्यर्थः ॥

अर्थ—ब्रह्मचारी अर्थात् वेदध्ययनाचारयुक्त आद्याश्रमी जिस समय केश कटावे उस समय बगल छाती उपस्थ और शिखा पर्य्यन्त के रोम कटावे ।

लालाजी कहिये किसकी बुद्धि भ्रष्ट है । तुम्हारी या स्वामीजी की ? बिना सोचे समझे पक्षपात के प्रवाह में पड़ कर किसी विद्वान पर बुरी तरह से आक्षेप करना किसी अशराफ का काम नहीं है । आपने जो यह लिखा है कि स्वामीजी ने चोटी और यज्ञोपवीत को त्याग दिया था अतः उनका ईसाई मुसलमानों के सदृश बन बैठना निश्चय है आपकी अनक्षरता और बेहूदगी का पक्का प्रमाण है । क्या सन्यासी को भी शिखा सूत्र रहता है ? इतना भी जिसे ज्ञान न हो, वह धर्म सम्बन्धी पुस्तक लिख कर अन्धों में कान राजा बनें इससे बढ़कर बेहयाई और क्या हो सकती है । क्या आज कलके सनातनी सन्यासी शिखा सूत्र रखते हैं ? क्या तुम्हारी दुकान पर कोई नया शास्त्र बना है ? जिसमें सन्यासी को शिखासूत्र रखने की आज्ञा हो । अपनी इस बेहयाई के कारण तो तुम्हें चिल्लू भर पानीमें डूब मरना चाहता

था। पर करो क्या, हो तो वेश्या के चेले। और नहीं तो मूर्खों में नाम ही होगा कि मुराद वाद का कोई दास इतना विद्वान हुआ कि उसने स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों को खण्डन में पुस्तक लिख डाली !

(स्वामी जी) जो सभी अहिंसात्मक हो जावें तो व्याघ्रादि पशु इतने बढ़ जायं कि सब गाय आदि पशुओं को मार कर खा जावें तुम्हारा पुरुषार्थ ही व्यर्थ हो जाय ? उत्तर-यह राजपुरुषों का काम है कि जो हानिकारक पशु वा मनुष्य हो उनको दण्ड देवे और प्राण से भी वियुक्त कर दे। (प्रश्न) फिर क्या उनका मांस फेंक दे। (उत्तर) चाहे फेंक दे, चाहे कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला दे वा जला देवे अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है। जितना हिंसा चोरी विश्वासघात छल कपट से पदार्थों को प्राप्त करके भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त करके भोजनादि करना भक्ष्य है इत्यादि। इस पर आप आक्षेप करते हैं कि स्वामी की बुद्धि भ्रान्ति का भण्डार है और अज्ञता का आगार जो कि मांस हारी मनुष्यों को हिंसकादि पशुओं और मनुष्यों का मांस खाने वाली जानती है।

उत्तर—स्वामीजी के लेख में कोई ऐसी बात नहीं जो आक्षेप के योग्य हो। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि उसे फेंक दे या

मांसाहारी कुत्ते आदि पशुओं को खिलादे। मांसहारी मनुष्य के लिये हिंसक पशुओं के मांस खाने की व्यवस्था तो दी नहीं वे तो उसके लिये भी हानि कर ही बतलाते हैं "यदि कोई मांसहारी खावे तो संसार की कोई हानि नहीं किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसहारी होकर हिंसक सकता है" इस वाक्य से स्वामी का अभिप्राय स्पष्ट है। वे तो कहते नहीं कि मांसहारी को उनका मांस खाना ही चाहिये किन्तु वे तो कहते हैं कि यदि मांसहारी खावे तो संसार की तो कोई हानि नहीं, पर उसकी हानि अवश्य होगी वह हिंसक हो सकता है। यदि आपकी ही बात मानलें तो भी आपको स्वामीजी पर तो नाराज होने की तो आवश्यकता न थी आपके शास्त्र तो हिंसक पशुओं के मांस खाने की आज्ञा देते ही हैं पहले आप उनकी मरम्मत तो कीजिये। शाही 'और गैंडा क्या हिंसक पशु नहीं हैं, परन्तु मनुस्मृति में इनके खाने की भी आज्ञा है। यथा

श्वाविधं शल्यकंगोधा खड्ग कूर्म शशांस्तथा।
भक्ष्यान्पंचनखेष्वाहुरनुष्ट्रांश्चैकतोदतः ॥

श्वाविध (भेंडिया) शाही, गोह गैंडा कछुवा खरगोश इन पंचनखों में ये तथा ऊंट को छोड़ कर दो तरफ़ दांत वाले प्राणी भी भक्ष्य हैं।

हम इस श्लोक को प्रक्षिप्त मानते हैं। परन्तु आप तो सब श्लोकों को मानते हो, फिर आपके मन्तव्य से मनु की

बुद्धि भी भ्रष्ट ही थी। और पुराण कर्ता व्यास * की बुद्धि भी भ्रष्ट ही थी जिन्होंने विष्णु पुराण में गैंडे का मांस खाना धर्मानुकूल ठहराया। प्रमाण पीछे गया है।

अब रह गया मनुष्य मांस। "उनका" इस सर्वनाम से मनुष्य मांस का ग्रहण करना लेखक का पक्षपात है। वाक्यार्थ बोध में आकांक्षा योग्यता आसत्ति और तात्पर्य्य इन चार बातों का ध्यान रखना पड़ता है। यहां पर भक्ष्याभक्ष्य विषय का वर्णन है। मनुष्य मांस कोई मांसहारी खाता ही नहीं अतः "उनका" इस पद से मनुष्य मांस का ग्रहण करना "योग्यता और तात्पर्य्य के विरुद्ध है। "उनका" पद से पशुमांस ग्रहण करना ही स्वामी को अभीष्ट है। इस खींचतान से अर्थ का अनर्थ करना लेखक की नालायकी है।

आक्षेप

(१) हिरण्याक्ष पृथ्वी को चटाई के समान लपेट कर सिरहाने धर सो गया इत्यादि (२) "रथेनवायु वेगेन" वायु के वेग के समान दौड़ने वाले घोड़ों के रथ पर बैठ कर सूर्योदय से चले चार मील गोकुल में सूर्यास्त समय पहुंचे।

---

* हम नहीं मानते कि व्यास ने विष्णु पुराण बनाया है। यह तो सनातनियों का विचार है। अतः हमारे पक्ष में व्यासजी महाराज पर आक्षेप नहीं आता।

(३) पूतना का शरीर ६ कोस चौड़ा और बहुत सा लम्बा लिखा है इत्यादि बातें भागवत के नाम से स्वामीजी ने लिखी है परन्तु भागवत में ऐसा नहीं। यह लेख बुद्धि की भ्रान्ति ही के कारण स्वामीजी ने भागवत के नाम से लिखा है।

पाठक वृन्द पहले कथा पढ़िये:—

ब्रह्मा के शरीर के दो भाग हो गये। जो पुमान् था वह स्वायंभुवन मनु था जो स्त्री थी वह शतरूपा हुई। ब्रह्माने मनु से सृष्टि करने को कहा तो मनु ने कहा पृथ्वी कहां है जिसपर सृष्टि हो। वह तो जलमें डूबी हुई है। ब्रह्माने विष्णु का स्मरण किया। स्मरण करते ही ब्रह्माकी नाक से अंगुष्ठ मात्र वराह पैदा हो गया। देखते देखते वह हाथी के समान बढ़ गया। वह वराह सूंघते सूंघते जल में घुस गया। पृथ्वी को पाकर अपने डाढ़ पर रख कर जब चला तब हिरण्याक्षने मार्ग रोक लिया। तब वराहने उसको मार डाला और पृथिवी को लाकर पानी पर स्थापन कर दिया।

हिरण्याक्ष का जन्म भी सुन लीजिये। दक्ष की कन्या दिति काम पीड़ित होकर कश्यप के पास सायं काल को गई। कश्यप ने कहा कि दो घड़ी और ठहर जा पर उसने न माना। कश्यपने उससे भोग किया और दिति को १०० वर्ष तक गर्भ रहा। उससे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष दो लड़के पैदा हुये।

यह उक्त कथा अलिफ लैला की कथा के समान सोलहो आना गप्प नहीं तो क्या है ? जब ब्रह्मा के देह के दो भाग हो गये तो फिर ब्रह्मा कहां रहे ? ब्रह्मा तो मनु और शतरूपा में परिणित हो गया, फिर मनु को सृष्टि करने को कैसे कहेगा ? जब पृथिवी ही नहीं तो मनु शतरूपा किस वस्तु पर ठहरे थे ? जब ब्रह्मा के शरीर के दो भाग हो गये तो फिर ब्रह्मा कहां रहे जिन्होंने विष्णु का स्मरण किया । और शूकर कहां से जब कि ब्रह्मा पहले ही मर चुका था । क्या विष्णु इतना अन्धा जिससे सूंघ सूंघ कर पृथ्वी जल में खोजनी पड़ी ? जल में डुबकी लगाने के लिये शूकर की जो कल्पना की गई है वह भी बनाने वाले की पण्डिताई है । शूकर जल जन्तु नहीं है । क्या दर्शन शास्त्र के अनुसार सृष्टि क्रम यही है ?

सबसे भारी गप्प तो हिरण्याक्ष का वहां पर उपस्थित कर देना है जब पृथ्वी जल में डूबी थी, तब कश्यप दिति आये कहां से ? और कश्यपने दिति से भोग कहां किया ? १०० वर्ष तक गर्भ धारण करके कहां रहती थी ? १०० वर्ष तक गर्भ धारण करना भी वेद विरुद्ध, प्रकृति-नियम विरुद्ध है । यह भी गप्प का बड़ा भाई है । जब वे दोनों पैदा हुये तो कहां पर ? पृथ्वी पर, या पानी ही पर ? एक बात और भी है । लिंग पुराण अ० ९३ में लिखा है कि हिरण्य कशिपु प्रह्लाद हिरण्याक्ष से नरसिंह का युद्ध हुआ था जिसमें हिरण्यक शिपु मारा गया और हिरण्याक्ष

राजा हुआ था इससे पता चलता है कि पृथ्वी मौजूद थी। पानी में डूबी न थी। यदि पृथ्वी न थी तो वह राजा किसका हुआ ? जब हिरण्यकशिपु के मारे जाने पर हिरण्याक्ष की सत्ता लिंग पुराण से सिद्ध है तब उक्त कथा सोलहो आने गप्प ठहरी या नहीं ?

यदि यह कहो कि राजा होने के बाद वह पृथ्वी को उठा कर ले गया, तब भी भागवत की कथा तो गप्प ही ठहरेगी ? फिर वह उठाकर ले कैसे जायगा ? अपने कहां रहेगा ?

जो कथा इतनी असंभव दोषग्रस्त हो जिसका महत्व अलिफ़ लैला के किस्से से अधिक नहीं, ऐसी गप्प कथा को खण्डन करने के लिये स्वामी जी ने मज़ाक़ के रूप में दो चार गप्प और जोड़ दिये तो स्वामी पर यह इलज़ाम नहीं लग लग सकता कि स्वामी ने भागवत के विरुद्ध लिखा है। जब भागवत ने स्टष्टि नियम के विरुद्ध, दर्शनशास्त्र के विरुद्ध गलत कथा बनाकर लिख मारी तो स्वामी जी गप्पके विरुद्ध गप्प ही मार दिया तो क्या बिगड़ गया जो उनकी बुद्धि पर आक्षेप करने लगें।

लिंग पुराण में लिखा है—

> देवान् जित्वाथ दैत्येन्द्रो बद्ध्वा च धरणी मिमाम्।
> नीत्वा रसातलं चक्रे वन्दी इन्दीवरे क्षणाम्॥

वह पृथ्वी को बांध कर रसातल में ले गया और क़ैद कर दिया। पृथ्वी को बांध कर ले जाकर कैद करना यद्यपि

गप्प ही है। कोई भी बुद्धिमान इस असंभव बात को सत्य नहीं कह सकता तथापि यदि वह ले गया तो क्या वह सिर हाने नहीं रख सका। स्वामी ने लिखा कि चटाई के समान लपेट कर सिर हाने धर सो गया। पुराण कहता है कि वह उसे उठा ले गया। इन दोनों में केवल वर्णन मात्रा का अन्तर है भाव दोनों का एक ही है। कथा का तात्पर्य्य पृथ्वी को उठा कर ले जाने में है। जो उठा कर ले जा सकता है वह उसको सिर हाने भी रख सकता है।

जो गठरी बाँध कर उठाले जावेगा, वह सिरहाने रख कर सो भी सकता है। वास्तव में जब कथाही गप्पसे भरी है, लेशमात्र भी जिसमें सत्यता नहीं, उस गप्प को निरा करण करने के लिये तर्क से एक बात और मिला दी तो इसमें स्वामी-पर आक्षेप कैसा? आक्षेप तो तब ठीक होता जब कथा सत्य होती। इसलिये भागवत के अनुकूल स्वामी जी का कथन न होने पर भी उन पर कोई दोष नहीं लग सकता।

(२) स्वामी जी का यह लिखना ठीक है कि वायु वेग वाले रथ पर बैठकर सवेरे चले और शामको मथुरा पहुँचे। देखो भागवत क्या कहता है—

रथेन वायुवेगेन कालन्दी मघ नाशिनीम् ॥ ३८ ॥

फिर स्कन्ध १० अ० ३२ श्लोक ३८ में मथुरामें शामको पहुंचाने का स्पष्ट वर्णन है:—

मथुरा मनयद्द रामं कृष्णं चैव दिनात्यये ॥

दिन के बीत जाने पर शाम को अक्रूर राम और कृष्ण को मथुरा ले गया।

(३) पूतना की बात भी ठीक ही लिखी है। देखो भागवत स्कन्ध १० अ० ६ श्लोक १४

पतमानोपितद्देह स्त्रिगव्यू त्यन्तरद्रुमान्।

चूर्णयामास राजेन्द्र महदासीत्तदद्भुतम् ॥

इस पर पं०—ज्वाला प्रसाद मिश्र की टीका सुनिये।

हे राजन् परीक्षित, जा समय पूतना को देह गिरो ता समय ६ कोस के बीच में जो वृक्ष हैं तिनको चूर्ण होत भयो। यह बड़ो आश्चर्य भयो।

प्रश्न—प्रह्लाद की कथा में खंभे का तपाना और उस पर चींटिओं का चलाना सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ५ में लिखा है। यह कथा भी श्रीमद्भागवत में नहीं है यदि है तो दिखलाओ। यदि नहीं है तो मिथ्या लिखकर जनता को क्यों धोखा दिया गया ?

उत्तर—मित्रवर! यह इलज़ाम तो भागवत के कर्ता पर ही लगाना चाहिये जिसने कथा को एक दम झूठ लिख दी है है, कूर्म पुराण अध्याय १६ में लिखा है:—हिरण्यकशिपु के अत्याचार से पीड़ित होकर सब देवता और ऋषिलोग शंभु

के पास गये वे सबको लेकर विष्णु के पास गये और अपना सब कष्ट सुनाया तब विष्णुने एक पुरुष उत्पन्न किया जिसका शरीर मेरु पर्वत के समान था (मेरु पर्वत ३२ लाख योजन ऊंचा है) उससे विष्णुने कहा कि तुम जाकर दैत्यराज को मार डालो। वह नृसिंह बनकर गया वह हिरण्यकशिपु और प्रह्लाद के साथ लड़ने लगा। उसे ऐसी मार पड़ी कि वह भाग गया। तब स्वयं विष्णु नरसिंह बन कर गये और प्रह्लाद से युद्ध करने लगे। प्रह्लाद युद्धमें पराजित हो गया तब हिरण्यकशिपु लड़ने लगा और नरसिंह के हाथ से वह मारा गया। तब हिरण्याक्ष राजा हुआ वह वेद और पृथ्वी को रसातल में ले गया। विष्णु ने वराह रूप धर कर उसे मारा और पृथ्वीका उद्धार किया। तब प्रह्लाद राजा हुआ और ब्राह्मणों का अपमान करने लगा और पितृवैर स्मरण कर विष्णु से विरोध करने लगा। फिर दोनों में युद्ध हुआ। विष्णु से प्रह्लाद पराजित होकर पुनः उनका भक्त बन गया"। भागवत की प्रचलित कथा और इस कथा में कितना अन्तर है? न तो खंभ फाड़ कर नरसिंह पैदा हुये, न उसके पिता ने उसको कष्ट दिया, बल्कि वह स्वयं विष्णु से एक बार नहीं दो बार लड़ा। इसी प्रकार विष्णु पुराण प्रथम अंश अध्याय १६ से २१ तक में प्रह्लाद की कथा है इसमें भी खंभ से पैदा होने का जिक्र नहीं किन्तु भागवत के विरुद्ध अनेक बातें हैं। अब आप ही बतलावें कि भागवत का बनाने वाला

धोखा देहीका दोषी है या स्वामी जी ? उसने तो ...लिहो आने गप्प मार कर जनता को अज्ञानी बना डाला है हम मान लेते हैं कि खंभे पर चींटी का चलना भागवत में नहीं है पर कूर्म पुराण और विष्णु पुराण तो दोनों ही आपके खंभे का ही निराकरण कर देते हैं फिर स्वामी जी पर ही द्वेष बाण चलाने पर क्यों तैयार हो गये ? इन्हें क्यों नहीं कोसते ? जैसे पुराणों ने अपनी अपनी कल्पना शक्ति लगाई है वैसे श्री स्वामी ने उसके खण्डन में कल्पना करली। जब कल्पना ही कल्पना है तो धोखा बाजी कैसी ? आप विचार कर लें। इस प्रकार के व्यर्थ प्रश्नों से अपने पुराण की मिट्टी पलीद क्यों करवाते हैं ? स्वामी पर व्यर्थ कीचड़ उछालोगे तो पुराण की और पोल खुलेगी।

अब लेखक बतलावे कि बुद्धि किसो को भ्रान्त है ?

प्रश्न—जानश्रुति शूद्र ने भी वेद रैक्व मुनि के पास पढ़ा था जानश्रुति को शूद्र कहने वाला निःसन्देह भ्रान्त बुद्धि का है। क्यों कि व्यासजी ने उत्तर मीमांसा में उनके क्षत्रिय होने की सम्यक् सिद्धि की है।

उत्तर-प्रथममें रैक्व की कथा उपनिषद्से ज्यों का त्यों देता हूं जिससे विषय के समझने में सुविधा हो और लेखक के निर्मल हृदय का परिचय मिले। यह कथा छान्दोग्योपनिषद् चतुर्थ प्रपाठक में आई है। कथा यों है:—

बहु पाक्य बहुदायी श्रद्धादायी जानश्रुति नाम का एक

राजा था। उसने अपने देश में लोगों के रहने के लिये धर्मशालायें बनवाईं और उनमें टिकने वालों को भोजन देता था। एक रात को हंस उड़ रहे थे उस समय एक हंस ने दूसरे से कहा कि जान श्रुति की ज्योति आकाश तक पहुंच रही है उससे सम्बन्ध मत करो ऐसा न हो कि वह तुमको भस्म कर दे। उसने कहा कि प्रसिद्ध सयुग्वा रैक्व मुनि की प्रशंसा के समान किस कुत्सित वराक राजा की प्रशंसा तुम कर रहे हो। राजा ने हंस की बात सुन ली। शयन से उठते ही अपने सारथि से कहा कि रैक्व का पता लगाओ। उसने जाकर पता लगाया और राजा से निवेदन किया। वह जान श्रुति छः सौ गाय, एक निष्क, और एक अश्वतरी युक्त रथ लेकर रैक्व के पास गया और बोला कि इतनी चीजें मैं आपके लिये लाया हूं। आप जिस देवता की उपासना करते हैं उस देवता के विषय में मुझे शिक्षा दें। तब रैक्व ने कहा:—

तमुह परः प्रत्युवाचाह हारेत्वा शूद्र ! तवैव सह गोभिरस्त्विति। तदुह पुन रेव जान श्रुतिः पौत्रायणः सहस्रं गवां निष्कमश्वतरीरथं दुहितरं तदादाय प्रतिचक्रमे।

रैक्व ने कहा—हे शूद्र, ये गो आदि सब तेरे ही रहें। यह सुन वह पुनः वह एक सहस्र गौ एक निष्क एक अश्वतरी रथ और अपनी पुत्री को ले रैक्व के पास गया और रैक्व को दिया। राज की उस कन्या के मुख को प्यार करते हुये

रैक्व ने कहा कि हे शूद्र इन गौ आदि सामग्री को जो तुम लाये हो, सो अच्छा ही किया है। परन्तु आप अपनी इस पुत्री के मुख से ही मुझको बोलवावेंगे। इसके बाद महावृष देश में जो यह ग्राम है जो रैक्व पूर्ण नाम से अब प्रसिद्ध है, जहां रैक्व रहते थे उस ग्राम को राजा ने रैक्व को दे दिया इसके आगे रैक्व ने जान श्रुति को उपदेश किया है।

पाठक, आप उक्त कथा को पढ़िये और आप ही फैसला कीजिये कि जान श्रुति कौन था ? उपनिषद् स्पष्ट बतला रही है कि वह शूद्र था रैक्व ने जिसे एक नहीं दो बार शूद्र कहा, उसे स्वामीजी इसीके आधार से शूद्र कहैं तो उन पर कोप क्यों ? क्या उक्त कथा में कहीं भी क्षत्रियत्व का गन्ध है ? उपनिषद् काल में आज कल सरीखे जात पांत का बखेड़ा ही न था। वेद में तो ऐसा कोई मंत्र नहीं, जो शूद्र के अधिकार का बाधक हो। प्रत्युत यह बड़ा साधक प्रमाण है कि इलूष का पुत्र कवष ऋषि जन्म से शूद्र था वह ऋग्वेद के अपोन पत्रीय सूक्त का द्रष्टा है इसी प्रकार कक्षीवान् जो शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न हुये थे, मंत्र द्रष्टा हैं ऐसी दशा में यह स्पष्ट हो जाता है कि जब शूद्र वेद मंत्र द्रष्टा है तो वेद या ब्रह्मज्ञान का अनधिकारी शूद्र कैसे हो सकता है ? पिछले काल में स्त्री और शूद्र दोनों के लिये वेद का निषेध पाया जाता है पर पूर्वकाल में ऐसी व्यवस्था न थी। घोषा आदि स्त्रियां भी ऋषिका हुई हैं, जिन्होंने स्वयं मंत्रों का साक्षात् किया है।

ऐसी दशा में शूद्र और स्त्री को वेद का अनधिकारी बतलाना स्वयं वेद विरुद्ध है। स्वामीजी ने जो लिखा है, वह वेद और उपनिषद् की कथा के अनुकूल है।

आप कहेंगे कि सूत्रकार ने तो दलील देकर जान श्रुति को क्षत्रिय बतलाया है, फिर आप व्यासजी के मत को क्यों नहीं मानते ?

इसका उत्तर देने के पहले मैं सूत्र के भाष्यों पर विचार करना चाहता हूं पाठक भी हमारे साथ पक्षपात त्याग कर चलें और देखें कि उसके क्षत्रिय होने में जो जो तर्क दिये गये हैं, वे सत्यतः ठीक हैं या नहीं। अब सूत्रों के भाष्यों पर विचार कीजिये। उपनिषद के वचनों से जानश्रुति शूद्र ही प्रतीत होता है। सूत्र के आधार से भाष्य कार ने उसको क्षत्रिय ठहराने के लिये निम्न लिखित हेतु दिये हैं।

[१] हंस की बात सुन कर उसे शोक हुआ था, इस लिये ऋषि ने उसे शूद्र कहा। उत्तर-उसको शोक होने का उपनिषद् में कोई चिन्ह नहीं। यदि कहा जाय कि वह तुरन्त रैक्व के पास भागा गया यही शोक का चिन्ह है। परन्तु यह कोई आवश्यक चिन्ह नहीं हर्ष का चिन्ह भी है कि उसको एक पूरे गुरू का पता लग गया। इस लिये वह हर्ष से प्रफुल्लित हुआ। शोक होने के कारण किसी को शूद्र नहीं कहा जा सकता। यदि ऐसा माना जाय कि जिसको शोक हो, वह शूद्र शब्द से सम्बोधित किया जाय, तो इससे कौन

बचेगा ? नारद ने अपने मुख से कहा था "सोहं भगवः शोचामि तं मा भगवन् शोकस्य पारं तारय त्विति। हे भगवन् मैं शोक में हूं, आप मुझे शोक से पार उतारिये। इस पर सनत्कुमार ने तो उसे उपदेश देना आरंभ किया। न तो शूद्र ही कहा और न वापस लौटाया। अतः यह हेतु अव्यभिचारी नहीं है।

दूसरा हेतु यह है कि अभिप्रतारी क्षत्रिय के समभिव्याहार से जानश्रुति भी क्षत्रिय है क्योंकि विद्याध्ययन में प्रायः समान जातिवाले के ही समभिव्याहार होते हैं। उत्तर—प्रायः कहने से ही यह स्वीकार कर लिया गया है कि यह हेतु व्यभिचारी है। फिर इस व्यभिचारी हेतु से जानश्रुति का क्षत्रिय होना कैसे सिद्ध हो। वस्तुतः जानश्रुति का अभिप्रतारी के साथ समभिहार ही नहीं, समभिव्याहार तब होता, यदि वे दोनों एक समय में एक गुरु के पास एक ही विद्या अध्ययन करते। परन्तु ऐसी बात नहीं है। जानश्रुति ने रैक्व से संवर्ग विद्या सीखी, परन्तु अभिप्रतारी के विषय में इतना ही मालूम है कि वह इस विद्या को जानता था।

३—तीसरा हेतु यह है कि विद्या प्रदेशों में संस्कार का परामर्श है और शूद्र के संस्कार अभाव कहा है।

उत्तर—यह हेतु जानश्रुति के शूद्र होने के पक्ष में है। क्यों कि जानश्रुति का उपनयन नहीं कहा गया है। न वह आर्यों के समान समिधा हाथ में लेकर गया, न उसने ब्रह्मचर्य

किया, न गुरु शुश्रूषा से विद्या पढ़ी। किन्तु बहुत कुछ धन आदि देकर उसके बदले में विद्या सीखी। आर्यों की पहले यह रीति थी कि विद्याध्ययन के लिये गुरु के पास जब जाते थे तो हाथ में समिधा लेकर जाते थे। जब वे जाते थे तो उप नयन पूर्वक उनको विद्या दी जाती थी, परन्तु जान श्रुति का उपनयन नहीं हुआ, इससे वह शूद्र था।

४ चौथा हेतु जानश्रुति के क्षत्रिय होने का यह दिया है कि सत्य काम के शूद्र न होने का निर्णय करके ही गौतम ने उसका उपनयन किया है। इससे शूद्र का अन धिकार सिद्ध होता है।

उत्तर—गौतम ने सत्यकाम की सरलता देख कर उसके ब्राह्मण होने का निर्णय किया है। इससे गौतम का पक्ष तो यह सिद्ध होता है कि वह गुण कर्म से ब्राह्मण मानता है। अन्यथा कैसे एकदासी के पुत्र को ब्राह्मण कह सकता था? यदि कहो कि उसे सरल जान कर ब्राह्मण के विन्दु से होने की संभावना की है क्योंकि ब्राह्मणों में सरलता और शूद्रों में कुटिलता होती है। तो भी संभावना ही हो सकती है, प्रमाण नहीं हो सकता। शूद्र में भी लोग सरल होते हैं और ब्राह्मणों में भी कुटिल। अतः यह हेतु ठीक नहीं।

[५-६] पांचवा हेतु यह है कि शूद्र को वेद के श्रवण और अध्ययन का निषेध है और स्मृतियों में भी शूद्र को ज्ञान न देने के लिये कहा गया है। इस पक्ष में जो शब्द प्रमाण

दिये गये हैं वे उपनिषद् काल के वचन नहीं हैं। ये वाक्य पीछे से बने हैं अतः उपनिषद् के विषय में इनका निषेध लागू नहीं हो सकता।

[६] छठवां हेतु यह दिया गया है कि क्षत्ता (सारथि] को रैक्व का पता लगाने के लिये भेजना और उसके पास ऐश्वर्य का होना, जानश्रुति को क्षत्रिय सिद्ध करता है।

उत्तर—यह हेतु तो बहुत ही निर्बल है। जैसे आज कल हिन्दू मुसलमान ईसाई अंग्रेज तुर्की आदि का भेद है, उसी तरह उस समय भी आर्य और अनार्य का भेद था। जिस प्रकार आर्यों में राजा होते थे उसी प्रकार अनार्यों में होते थे। अनार्यों को आर्यलोग शूद्र कहा करते थे। वह जानश्रुति अपनी जाति का राजा था और बड़ा पुण्यात्मा था। राजा होने के हेतु से ही उसके पास क्षत्ता था न कि क्षत्रिय होने से ? क्या आजकल अंग्रेजों और मुसलमान राजाओं को क्षत्रिय कहियेगा ? क्योंकि इनके पास भी सारथि तथा ऐश्वर्य पर्याप्त है। यह भी जान लेना चाहिये कि यह जानश्रुति और सत्यकाम का इतिहास उपनिषद् में अकस्मात् नहीं आगया। किन्तु चौथे प्रपाठक के आरंभ में इस बात की ओर ध्यान दिलाया गया है कि धार्मिक प्रकृतिका हर एक पुरुष ब्रह्म विद्या का अधिकारी है इसमें जाति गोत्रादि की रुकावट नहीं। इस लिये पहले जाति के शूद्र जानश्रुति का रैक्व से विद्याध्ययन कहा है

और फिर अज्ञात गोत्र सत्यकाम का गौतम से उपनयन पूर्वक विद्या ध्ययन कहा है—

यह समालोचना शंकर भाष्य के ऊपर से की गई। शंकराचार्य्यजी महाराज का भाष्य उपनिषद् के विरुद्ध प्रतीत होता है। इन सूत्रों पर स्वामी हरि प्रसादजी ने जो भाष्य किया है उसमें आपने जानश्रुति को शूद्र ही सिद्ध करके, शूद्र को भी ब्रह्म विद्या का अधिकारी सिद्ध किया है।

आपके भाष्य में यह सिद्ध किया गया है कि वह जन्म का तो शूद्र ही था परन्तु " उत्तरत्र " पश्चात् वह क्षत्रिय बन गया था। इसी लिये ऋषिने उसे शूद्र कहा था। शूद्र को ब्रह्म विद्या का अधिकार है। जब कि दासी पुत्र महीदास ने ऐतरेय ब्राह्मण बनाया और कवष ऐलूप वेद मंत्र द्रष्टा हुआ तो कोई कारण नहीं कि शूद्र वेदादि का अनधिकारी मान लिया जाय। अतःस्वामीजी का कथन वेदानुकूल है, उपनिषद् के अनुकूल है। उपनिषद् में उसको शूद्र ही कहा गया है।

दयानन्द का कच्चा चिट्ठा नामक पुस्तक में अधिकांश वे ही बाते हैं जिनका जिक्र दयानन्द की बुद्धि नामक ट्रैक्ट में है। यह भी लेखक की धूर्तता है। जब कि दयानन्द हृदय में, शव परीक्षा भंग पान, तथा पुराने सत्यार्थ पर से मांसादि का आक्षेप, नियोग, पुत्र परिवर्तन, विदेश जाने पर स्त्री का कर्तव्य, नीच कुल से भी स्त्री का ग्रहण, शिखावपन,

आदि विषय लिखे ही गये थे तो फिर इन्हीं विषयों को "दयानन्द का कच्चा चिट्ठा नामक पुस्तिका में लिखने की क्या आवश्यकता थी ? इसके दो अभिप्राय हो सकते हैं। एक तो धोका देकर पैसा कमाना, दूसरे लेखकों में नाम पैदा करना। परन्तु कोई भी पढ़ा लिखा आदमी दोनों पुस्तकों को एक साथ पढ़ कर आप के मलिन हृदय का पता लगा सकता है। और वाध्य हो कर यह कहे बिना नहीं रह सका कि लेखक का हृदय द्वेषाग्नि से जल रहा है अस्तु,

जिन विषयों का जिक्र "दयानन्द" बुद्धि की में आ चुका है, उनकी समालोचना करना समय को नष्ट करना है। शेष विषय पर समालोचना करना हमारा कर्तव्य है।

लेखक ने स्वामीजी के जीवन चरित्र पर से लिखा है कि वे पहले एक ब्रह्मचारी के शिष्य बने उसने उनका नाम शुद्ध चेतन रखा। इसके बाद ब्रह्मानन्द अद्वैतवादी के शिष्य बने और अपने को ब्रह्म कहने और समझने लगे। फिर परमानन्द के शिष्य बने, फिर विरजानन्द के शिष्य बने, फिर अद्वैत पक्ष का खण्डन करने लगे। इस पर आप आक्षेप यह करते हैं कि जो बराबर मत परिवर्तन करता रहा उसकी बात पर कौन विश्वास करेगा ? दूसरा आक्षेप यह है कि जो जीवन भर अपने को ब्रह्म माना उससे बढ़ कर नास्तिक कौन होगा ? ऐसे पुरुष के कथन का क्या भरोसा।

समालोचना—सत्य की खोज में अनेक गुरुवों का शिष्य बनना कोई नयी बात नहीं है। दत्तात्रेयी के २४ गुरु हुये थे। आजकल भी जिज्ञासु लोग अनेक विद्वानों के पास जाते है। एकके पास समाधान न होने से दुसरे केपास, दुसरे के पास से तीसरे के पास जाते हैं। यह कोई बुरा काम नहीं, किन्तु अत्यन्त उत्तम है। जिज्ञासुओं में ऐसी बुद्धि होती ही है। वे लोग तो अन्ध विश्वासी और पाखण्डी जो झूठी बात भी शास्त्रके नाम पर मानते हैं, परन्तु करते धरते कुछ नहीं।

जब किसी को कोई सिद्धान्त, जिसे वह मान बैठा हैं, गलत मालूम पड़ता है तो वह उसे त्याग देता है, यह तो एक मामूली बात है। यदि स्वामीजी ने किया तो क्या बेजा किया है। यह तो एक सत्य जिज्ञासु का कर्तव्य ही है। स्वामीजी को जीवन पर्यन्त अपने को ब्रह्म मानना कहना लेखक की अनभिज्ञता है लेखक का यह लिखना कि—जो जीवन पर्यन्त अपने को ब्रह्म माना, उससे बढ़ कर नास्तिक कौन होगा अपने सिद्धान्त को ही खण्डन करना है। यदि यही बात मानली जाय तो शंकराचार्य को नास्तिक मानना पड़ेगा। किन्तु लेखक बेचारा अपना ही सिद्धान्त नहीं जानता और इसी लिये अद्वैत वादी को नास्तिक कहता है। स्वामीजी की बात पर आपको विश्वास करने को कौन कहता है? जिसको वह अच्छा जंचेगा, मान लेगा और विश्वास करेगा। तुमने संसार का ठीका थोड़े ही ले रखा है।

दूसरा आक्षेप आप यह करते हैं कि स्वामीजी शूद्र के हाथ की बनी रसोई खाने को कहते हैं। जो शास्त्र विरुद्ध है। समीक्षा—लेखक को शास्त्र प्रमाण देकर स्वामी जी के मन्तव्य का खण्डन करना चाहता था, परन्तु लेखक को शास्त्र प्रमाण तो मिले नहीं, व्यर्थ ही स्वामीजी पर आक्षेप कर बैठा यह लेखक की नीच 'मनोवृत्ति 'का एक ज्वलन्त उदाहरण है क्या लेखक कोई प्रमाण दे सकता है जिसमें परस्पर खान पान का निषेध हो ?

देखिये आपका शास्त्र क्या कहता है:—

शूद्रादेव तु शूद्रायां जातः शूद्र इति स्मृतः।
द्विज शुश्रूषण परः पाकयज्ञ परान्वितः ॥ ४६ ॥
सच्छूद्रं तं विजानीयाद सच्छूद्रस्ततोन्यथा ॥ ५० ॥

औशनस स्मृति

शूद्र से शूद्रा में शूद्र उत्पन्न होता है। उसका काम द्विजों को सेवा करना और पाक यज्ञ करना है पाक करने वाले को सच्छूद्र कहते हैं और असच्छूद्र इससे भिन्न होता है। इससे आप समझलें कि जहां कहीं भोजन का निषेध शूद्र के हाथ से है वहां असच्छूद्र से तात्पर्य है सच्छूद्र से नहीं।

शूद्रोपि द्विविधो ज्ञेयः श्राद्धी चैवेतरस्तथा।
श्राद्धी भोज्यो स्तयो रुक्तो ह्यभोज्यो हीतरः स्मृतः॥

पंचयज्ञ विधानं तु शूद्रस्यापि विधीयते ॥
तस्य प्रोक्तो नमस्कारः कुर्वन्नित्यं न हीयते ॥

लघु विष्णु स्मृति अ० ५ श्लोक ६ । १० शूद्र दो प्रकार के होते हैं। एक श्राद्ध का अधिकारी दूसरा श्राद्ध का अनधिकारी। श्राद्धी का अन्न खाना चाहिये अश्राद्धी का नहीं। शूद्र को पंच यज्ञ करने का अधिकार है। यदि आप कहें कि यहां कच्चे अन्न का विधान है तो उत्तर यह है कि कच्चा अन्न तो असच्छूद्र के यहां का भी ग्राह्य है दूसरे ऐसा मानने पर सपात्रिक श्राद्ध कैसे होगा? सपात्रिक श्राद्ध में तो दाल भात रोटी आदि बनता है।

अतः मानना पड़ेगा कि शूद्रके हाथ की दाल भात रोटी आदि कच्ची रसोइ खाना शास्त्रानुमोदित है। कुछ लोग कहते हैं कि अपनी अपनी जात में जो भोजन करने का रवाज है और गैर विरादरी के यहां भोजन करने का रवाज नहीं है वह यद्यपि शास्त्र के अनुकूल नहीं है तो क्या देशाचार और कुलाचार तो है इस लिये यह कैसे अमान्य हो सकता है। ऐसे लोगों को चाहिये कि वे निम्न लिखित प्रमाणों पर ध्यान दें।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्मकर्तुमिहार्हसि

(गीता)

कृष्ण भगवान गीता में कहते हैं "इस लिये" कार्य अकार्य

की व्यवस्था में शास्त्र प्रमाण देखकर ही कर्म करना चाहिये। इस लिये शास्त्र विरुद्ध देशाचार कुलाचार कैसे मान्य हो सकते हैं क्यों कि गौतम धर्म सूत्र में लिखा है।

देशजाति कुलधर्माश्चाम्नायैरविरुद्धाः प्रमाणम्

। गौ० ११ अ २२ सूत्र ।

जो देशाचार और कुलाचार और जातिका धर्म आम्नाय वेदादिसे विरुद्ध न हो वह प्रमाण है इससे यह सिद्ध होगया कि जाति धर्म देश धर्म वेद विरुद्ध होने से त्याज्य है अब हमें देखना है कि खान पान के विषय में वेद की क्या आज्ञा है ?

सनःपावका द्रविणे दधात्वायुष्मन्तःसहभक्षाः स्याम।

[अथर्व वेद

वह पवित्र करने वाला परमात्मा हमको द्रव्य प्रदान करे हम आयुष्मान और साथ साथ भोजन करने वाले हों। §

समानी प्रपा सहवो अन्न भागः

समाने योक्त्रे सहवो युनज्मि ॥

अथर्व-३ ३७

ईश्वर आज्ञा देता है-तुम लोगों के पानी पीने का स्थान

---

§ सहभोजन का अर्थ एक थाली में बैठ कर खाना नहीं है। नोच्छिष्टं कस्य चिद्द्या आदि मनु प्रमाण से एक थाली में बैठ कर खाना त्याज्य है।

एकही हो तुम्हारा अन्न भाग अर्थात् भोजनादि व्यवहार साथ ही हो। ए मनुष्यों तुम लोगों को समान ही रस्सो में हम युक्त करते हैं॥

देखिये वेद एक साथ भोजन और जलपान का विधान करता है। जब वेद में ऐसी आज्ञा है तो फिर परस्पर खान पान से धर्म भ्रष्ट होने की बात सनातन धर्म में कैसे आ सकती है। फिर देखिये सहभोज की आज्ञा कैसी स्पष्ट है—

तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः।
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजस्पत्यम्॥

ऋ० ६-६-८-१२

[सखायः) हे सखाओ (यूयं वयं च) आप और हम और (सूरयः) ब्रह्मज्ञानी पुरुष सब कोई मिल कर साथ साथ (पुरोरुचः) सामने में जो स्थापित रुचिप्रद दाल भात रोटी आदि अन्न हैं (तं) उसे (अश्यामः) खावें। वह अन्न कैसा है (वाजगन्ध्यम्) बल प्रद, पुनः (वाजस्पत्स्यम्) बल दायक अनेक प्रकार के व्यंजनादि युक्त। यह मन्त्र स्पष्टतया सहभोजिता का प्रतिपादक है॥

पुनश्च

ओदनमन्वाहार्य्यपचने पचेयुस्तं ब्राह्मणा अश्नीयुः

शतपथब्रा० २।४।३।१४

यज्ञ में पाक और भोजन का भी विधान आता है। यजमान के घर पर प्रत्येक ऋत्विज भोजन करते थे। बड़े

बड़े यज्ञों में राजाओं के तरफ से पाक के लिये सूद—पाचक नियुक्त किये जाते थे। वे दास होते थे। ये विविध पाक बनाकर सबको खिलाते थे। इसकारण शतपथ ब्राह्मण कहते हैं कि अन्वाहार्यपचन में (जहां पर खाने के पदार्थ बनाये जाते हैं उस जगह और कुण्ड का नाम अन्वाहार्य्यपचन है) पाक करें और उसे ब्राह्मण खावें। पुनः मधुपर्क प्रायः सब यज्ञ में होता है। श्रौतसूत्र कहता है कि इस भोजन के पश्चात् जो अनुच्छिष्ट ओदनादि पदार्थ बच जावें वे किसी ब्राह्मण को दे देना चाहिये। यथाः—शेषं ब्राह्मणाय दद्यात्। लाट्यायन श्रौत सूत्र १।२।१० शेष खाद्य पदार्थ ब्राह्मण को देवे। इससे स्पष्ट है कि पूर्वकाल में कच्ची पक्की रसोई का विचार न था। भिक्षा में ब्राह्मणों को ओदन दिया करते थे यथाः—ब्राह्मणाय बुभुक्षिताय ओदन देहि स्नाताय अनुलेपनं पिपासते पानीयम्। निरुक्त दैवत काण्ड १।१४ भूखे ब्राह्मण को भात दो, नहाये को अनुलेपन और प्यासे को पानी। अभी तक सारस्वत ब्राह्मण अपने यजमान के घर की कच्ची रसोई बराबर खाते हैं।

निषाद जातिका अन्न।

जब श्री रामचन्द्र जी वन में जाते समय निषाद से मिले हैं तब वह निषाद सबके लिये अनेक प्रकार का खाद्य पदार्थ ले आया है यथाः—

ततो गुणवदन्नाद्यं उपादाय पृथक् विधम्।
अर्घ्यं चोपानयच्छीघ्रं वाक्यं चेद मुवाचह॥
स्वागतं ते महावहो, तवेयमखिला मही।
वयंप्रेष्याःभवान् भर्त्तासाधु राज्यं प्रशाधिनः॥
भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च लेह्यं चैतदुपस्थितम्।
शयनानिच मुख्यानि वाजिनां खादनं तथा॥

बालकाण्ड ५१-३७-४०

यहां चारो प्रकार के भक्ष्य भोज्य पेय और लेह्य भोजन का वर्णन है। फिर जब रामचन्द्र सेवरी के आश्रम में गये हैं तब उसने पाद्य और आचमनीय आदि सर्व प्रकार का भोजन दिया है। पाद्यं चाचमनीयं च सर्वं प्रादाद् यथा विधि। आरण्य काण्ड अध्याय ७४-७। पीने के लिये जो पानी दिया जाता है उसे आचमनीय कहते हैं।

सूद—सूपकार पाचक आदि कौन होते थे? जब पूर्वकाल में अश्वमेधादि यज्ञ होते थे, क्या आजकल के समान वहां भी ब्राह्मण ही पाचक नियुक्त होते थे। क्या आजकल के समान ही "आठ कन्नौजिया नौ चूल्हा" के लोग कायल थे और अलग २ चूल्हा फूंकते थे। नहीं, उस समय भोजन बनाने वाले शूद्र लोग हुआ करते थे।

आरालिका सूपकारा रागखाण्डविकास्त था।
उपातिष्ठन्त राजानंधृतराष्ट्रं यथा पुरा॥
म० भा० आश्रमवासिपर्व प्रथमाध्याय श्लोक १६

इससे सिद्ध है कि राजा के पाक करने वाले आरालिक सूपकार रागखाण्डविक आदि पुरुष निर्युक्त होते थे। ये सब भोजन बनाने वालों के भेद हैं ऐसे रामायण महाभारत आदि ग्रन्थों में विवाह आदि के समय जहां २ भोजन बनाने का वर्णन आया है वहां वहां भोजन बनाने वाले ये ही दास वर्ग आये हैं, ब्राह्मण नहीं।

आजकल जहां देखो वहां भोजन बनाने का काम ब्राह्मण करते हैं। पी० बबर्ची भिश्ती खर इन चारों का काम अकेले ब्राह्मण करते हैं पर क्या शास्त्रों में इसका कहीं भी उल्लेख है! क्या भोजन बनाना ब्राह्मण धर्म है! कदापि नहीं, यह तो स्त्री और शूद्रों का काम है। देखो आपस्तम्ब धर्मसूत्र द्वितीय प्रश्न।

आर्याः प्रयता वैश्वदेवे अन्नसंस्कर्तारः स्युः।

आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्तारः स्युः

बड़ी सावधानी से पवित्र होकर आर्य्य वैश्वदेव का अन्न पकावें अथवा आर्यों के देख रेख में शूद्र लोग अन्न पकावें।

असिजीवी मसीजीवी देवलो ग्रामयाचकः।

धावकः पाचकश्चैव षडेते शूद्रवद् द्विजाः॥

तलवार से जीविका करने वाला, लेखक, मन्दिर का पुजारी ग्राम में भिक्षा मागनेवाला, पठवनिया, रोटी पकाने वाला, ये छः द्विज शूद्र के समान हैं। इससे स्पष्टपता लगता है कि भोजन बनाना ब्राह्मण का काम नहीं किन्तु शूद्र का काम है॥

आपस्तम्बस्मृति कहती है:-सायं प्रातः सदा सन्ध्यां ये विप्रानोपासते। कामं तान्धार्मिको राजा शूद्र कर्मसुयोजयेत् ॥ जो द्विज सायं प्रातः सन्ध्या न करे उसे धार्मिक राजा शूद्र के काम में लगावे। जब ब्राह्मण शूद्रवत् हो गये तो ये उक्त शास्त्र वचन से शूद्र के काम में लगाये गये।

महाभारत विराट पर्व में लिखा है कि जब पांचो पाण्डवों को १ वर्ष तक अज्ञात वास करने का समय आया, तो सब वे सब वेष बदल कर विराट राजा के पास गये। भीम ने पाचक के वेष में राजा के पास जाकर कहा:—

नरेन्द्रशूद्रोऽस्मि चतुर्थवर्णभाक्गुरूपदेशा त्परिचारकर्मकृत्। जानामि सूपांश्च रसांश्च संस्कृतान् मांसान्य पूपांश्च पचामि शोभनाम् ॥

हे राजा मैं चौथे वर्ण का शूद्र हूं। गुरू के उपदेश से सेवा कर्म अच्छी तरह जानता हूं। दाल तथा अनेक प्रकार के सुसंस्कृत रसों तथा मांस को बनाना जानता हूं। भीम के ऐसा कहने पर विराट ने शङ्का भी की है:—

तमब्रवीन्मत्स्यपतिः प्रहृष्टवत् प्रियं प्रगल्भं मधुरं विनीतवत्। न शूद्रतां कांचन लक्षयामिते कुबेरचन्द्रेन्द्रदिवाकर प्रभम् ॥ नसूपकारो भवितुं त्वमर्हसि सुपर्णगन्धर्वमहोर गोपमः। अनीककार्याग्रधरो ध्वजी रथी भवाद्य मेवारक्षया-हिनीपतिः ॥

तब विराट ने कहा कि मैं तुम में शूद्रका कोई लक्षण नहीं देखता। तुम तो कुबेर-चन्द्रादि के समान कान्तिवाले हो। तुम सूपकार होने के योग्य नहीं हो तुम तो हमारे हाथियों की सेना के संचालक बनो। इसके उत्तर में भीम ने कहा—

चतुर्थं वर्णोऽस्म्यहमुग्रशासन, नवैवृणो त्वामहमीदृशंवदन्।
जात्यास्मि शूद्रोवल्लेतिनाम्ना जिजीविषुस्त्वद्विषयं समागतः।

हे उग्रशासन! मैं चतुर्थ वर्ण का हूं। मैं आपके इस पद को स्वीकार नहीं कर सकता। मैं जाति से शूद्र हूं। वल्लव मेरा नाम है। जीविकाके लिये आपके देशमें आया हूँ॥

'SHRI MAN-MAHABHARATAM'

A new edition mainly based on the South Indian Text with foot notes and reading edited by T. B. Krishnacharya and T. R. Vyasacharya Proprietors—Madhawa Vilas-Book Depot.,

Kumba Konam.

अब पाठक लोग समझ गये होंगे कि रोटी बनाना शूद्रका धर्म है। अब बतलाइये आजकल हिन्दुओं का रस्म रेवाज शास्त्र तथा पूर्व पुरुषों के नियम के विरुद्ध है या नहीं?

आप लिखते हैं कि स्वामी दयानन्द ने स० १८३५ के सत्यार्थ प्रकाश में मृतक श्राद्ध माना था, परन्तु दूसरी आवृत्ति में उसका खण्डन कर दिया। मैं आपसे पूछता हूं कि उनमें उनने क्या बेजा किया? यदि उन्होंने उसे अयो-

किक समझ कर खण्डन कर दिया तो आप उसका मण्डन करें। हर एक को अपने मत को खण्डन करने का अधिकार है यदि उसकी समझ में वह मत गलत जँचने लगा हो। आप इसकी उपयोगिता दिखलाइये, मान लिया जायगा।

स्वामी दयानन्द ने अ० १४ मंत्र ६ के पदार्थ में लिखा है कि पीठ से बोझ उठाने वाले ऊंट आदि के सदृश वैश्य जाति को लिखा है। देखो, दयानन्दजी ने वैश्यों की कैसी निन्दा की है।

जब मनुष्य के हृदय में पाप बस जाता है तो अपने प्रतिपक्षी के सत्य बात को भी तोड़ मड़ोर कर जनता में भ्रम फैलाना चाहता है परन्तु आज १६ वीं शताब्दी के लोग नहीं है। यह बीसवीं शताब्दी है। स्वामीजी ने नहीं लिखा है किन्तु वेद ही कहता है, स्वामी ने तो अर्थ किया है। वैश्य लोग अपनी पीठ पर कपड़े की गठरी लाद कर क्या आज कल भी नहीं ले जाते? तो क्या वे ऊंट होगये। स्वामी का अर्थ तो यह है:—पष्ठवाट् अर्थात् पीठ से बोझ उठाने वाले ऊंट आदि के समान हे वैश्य तू बड़े बल युक्त पराक्रम की प्रेरणा कर। जिसका साफ अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार ऊंट बलवान होने से बोझा ढोने में समर्थ होता है, उसी प्रकार वैश्य, भी बलशाली और पराक्रमी बन कर अपने व्यापार में लगे। आप कहेंगे कि यह उपमा ठीक नहीं, तो मैं पूछता हूं कुत्ते से विद्यार्थी की, बैल के कन्धे से बड़े बड़े

राजाओं के स्कन्ध से, उपमा देना क्या अच्छा है? इसे तो आप भी मानते होंगे। उपमा एक देश में ग्रहण होती है, सर्व देश में नहीं। लेखक जानता तो सब है, परन्तु करे क्या, उसे तो किसी किसी प्रकार कालूराम की किताब से दो चार बातें लेकर लेखक बनाना है, फिर नीचता क्यों न करे।

आप लिखते हैं कि स्वामीजी ने विद्वानों को जमाई समान लिखा है क्या आर्य समाजी मानते हैं? यदि लेखक को कुछ भी साहित्य का ज्ञान होता तो इस प्रकार मूर्खों के समान व्यर्थ प्रश्न करके आक्षेप न करता। यह मनुष्य सिंह के समान है, क्या इसका भाव यही है कि मनुष्य सिंह है? उपमा तो सदा एक देश में होती है सम्पूर्ण देश में नहीं। जिस प्रकार मनुष्य को सिंह समान कहने से मनुष्य में सिंहवत् पराक्रम और बल का ग्रहण होता है, उसी प्रकार विद्वान् को जमई के समान कहने का भाव यह है कि जिस प्रकार जमई की खातिरदारी करते हैं उसी प्रकार विद्वान की खातिरदारी करनी चाहिये। परन्तु बेचारा लेखक करे क्या, जैसे गुरु वैसे चेला दोनों नरक में ठेलम ठेला। यह प्रश्न कालूराम का ही है जिसको लेकर दासजी ने लिखा है। अपनी अक़्ल से चलते तो शायद इस प्रकार धोखे में न पड़ते।

स्वामीजी ने स्त्री को माता की उपमा दी है यह कितनी योग्यता है? अध्याय २७ मंत्र ४०।

यह प्रश्न भी कालूराम का ही है। इसने चोरी की है।

दासों का काम चोरी करना तो है ही। दासका अर्थ ही चोर डांकू लफंगे का होना है, तो फिर वेचारे ने "यथा नाम तथा गुणः" को चरितार्थ कर ही दिया तो क्या वेजा किया॥

उपमा का तात्पर्य्य ऊपर बतला दिया गया है कि उपमा एक देश में होती है वेद भाष्य का खमोलना चोरी करके करने चले, पर साधारण संस्कृत साहित्य का लेश मात्र भी ज्ञान नहीं। यह तो एक प्रसिद्ध बात है। आक्षेप करने के पहले सुभाषित रत्न भाण्डागार का सती वर्णन ही उठा कर देख लेते तो व्यर्थ कष्ट न उठाना पड़ता जहां लिखा है:—

कार्ये दासी रतौ वेश्या भोजने जननी समा।
विपत्ती बुद्धि दात्रीया सा भार्या सर्व दुर्लभा॥

कार्य में दासी के समान, रति में वेश्या के समान, भोजन खिलाने के समय माता के समान विपत्ति में बुद्धि देने वाली जो पत्नी होती है वह सर्वत्र दुर्लभ है।

क्या यह बात गलत है? माता से उपमा देने से, स्त्री में माता के खिलाने पिलाने के प्रेम का ग्रहण है। दिमाग की थोड़ी दवा करा डालिये, और पाठशाला में जाकर थोड़ा अलंकार शास्त्र पढ़ लीजिये। तब पता लग जायगा कि जोरू माता के समान सुख देती है या नहीं?

अ० २८ मंत्र ३२ का भावार्थ—हे मनुष्यों जैसे वैल गावों को गाभिन करके पशुओं को बढ़ाता है, वैसे ही गृहस्थ लोग स्त्रियों को गर्भवती करके प्रजा को बढ़ावें।

इस पर लेखक ने तो कुछ आक्षेप न किया, बेचारा लेखक करे तो क्या करे, चोर ही तो ठहरा, लिखते समय चोरी तो करली पर आक्षेप करना न आया। जिस प्रकार प्रश्न चोराया वैसे ही आक्षेप भी चुरा कर लिख देता तो क्या बिगड़ जाता?

पाठको, कितनी अच्छी उपमा है, परन्तु जो रातदिन व्यभिचारमें फँसे रहते हैं उन्हें इस उपमा में हँसी आवेगी, परन्तु जो लोग सदाचारी हैं, उन्हें इस उपमा से ब्रह्मचर्य का एक रहस्य मालूम पड़ेगा। पशु ऋतुगामी होते हैं। इसी वैदिक शिक्षा से "ऋतुकालाभिगामी स्यात् स्वदार-निरतः सदा" इस श्लोक की रचना हुई। अपनी स्त्री से ऋतुकाल ही में गमन करो, इस उपमा का इसी में तात्पर्य्य है। इसी शिक्षा की अव हेलना से कलुवा बुधुवा आदि निकृष्ट सन्तान होती है। यदि आपको उक्त उपदेश न जँचे तो रातदिन मौज करते जाओ क्योंकि तुम्हारे देवता ऐसा ही करते हैं।

अ० २४ मंत्र २। ३ के पदार्थ में मुर्गा उल्लू आदि पक्षियों की प्राप्ति और भावार्थ में उनके बढ़ाने को अच्छा लिखा है। दयानन्दियों को अपने गुरु की आज्ञा का पालन करना चाहिये।

जनाब, दासजी, समाज ने दो उल्लुओं को पाल रखा था, परन्तु जब से दोनों उड़ गये तब से हम लोगों ने उल्लू

पालना छोड़ दिया । और स्वामी की आज्ञा का पालन करने के लिये विष्णु की पत्नी लक्ष्मी के जिम्मे सौंप दिया गया है। आप रुष्ट न हों, मैंने नहीं पाला तो क्या, स्वामी की हुक्म अदूली हो सही, पर आपकी लक्ष्मीजी को तो पालना ही पड़ेगा, नहीं तो उनकी सवारी किस पर होगी ? कम से कम आपको तो उल्लू से घृणा न करनी चाहिये । क्योंकि आप लक्ष्मी के उपासक हैं जब लक्ष्मी की उपासना करते हैं तो वेचारा वाहन कहां जायगा उसकी उपासना भी शिव के वैल के समान करनी ही पड़ेगी। फिर स्वामीजी को धन्यवाद देने के बदले उन पर आप इतने रुष्ट क्यों हैं ? मालूम होता है उसी उल्लू के कारण आप कालूराम के चक्कर में फँस गये हैं।

अध्याय ६ मंत्र १४ के पदार्थ में गुरु शिष्य के प्रति अकथनीय असमंजस अश्लील कथन है इसी प्रश्न को रणधीर सिंह ने कालूराम के हिन्दू में छपवाया था जिसे नीचे देकर प्रश्न को स्पष्ट कर दिया जाता है।

प्रश्न—यजुर्वेद भाष्य के अ० ६ मं० १४ के अर्थ में स्वामी जी फरमाते हैं कि गुरु शिष्य की गुदा इन्द्रिय को शुद्ध करे। अब दर्याफ्त यह करना है कि यह कार्रवाई आर्य्य समाज में कैसे और कब होती है। रोज २ या किसी खास वक्त पर। अगर नहीं होती तो महर्षि का अपमान करना क्यों नहीं माना जा सकता ? उत्तर—खलः सर्षपमात्राणिपरछिद्राणि

पश्यति । आत्मनो विल्वमात्राणि पश्यन्नपिन पश्यति ।

दुष्ट लोग दूसरों के सरसों बराबर छिद्र को देखते हैं पर अपने बेल बराबर छेद को देखते हुए भी नहीं देखते ठीक यही कहावत यहां पर घटती है। इस प्रश्न के करने के पहले महीधर के भाष्य को पढ़ लेते तो शायद आप को प्रश्न करने में लज्जा आती। परन्तु आज कल की कालू पार्टी ने तो एक .मंत्र घोख लिया है "एकांलज्जां परित्यज्य सर्वत्र विजयी भवेत्" फिर इन्हें अपनी जेब टटोलने से क्या गरज ! स्वामी जी लिखते हैं कि:—हे शिष्य मैं तेरी वाणी प्राण नेत्र कान नाभि उपस्थ गुदा तथा चरित्रों को शुद्ध करता हूँ अर्थात् गुरु पत्नियों को चाहिये कि वेद उपवेद तथा वेद के अंगों और उपांगो की शिक्षा से देह इन्द्रिय अन्त:करण और मनकी शुद्धि शरीर की पुष्टि तथा प्राण की सन्तुष्टि और समस्त कुमार और कुमारियों को अच्छे गुणों से प्रवृत्त करावे।

भला इस पर शंका 'करने की क्या आवश्यकता थी ? क्या आज कल गुरु लोग शिष्य को शरीर के अङ्ग प्रत्यंग को शुद्ध और साफ रखने के लिये उपदेश नहीं देते ? क्या अंग प्रत्यंग का नाम लेने से ही कोई पाप हो गया ? क्या इस तरह वेद पर ही आप का आक्षेप नहीं होरहा है जिसे आप भी मानते हैं आपकी बुद्धि कैसी परिष्कृत है कि शुद्ध करना का अर्थ आप पानी से धोना ही समझते हैं नहीं तो इस

औरनको अनर्गल शंका न करते। क्योंजी धर्मजी वाणी मन प्राण चरित्र आदि भी क्या पानी से शुद्ध होते हैं या उपदेश से? फिर पानी ही आपके दिमाग में कहां से घुस गया? महात्मन् यहां उपदेश के द्वारा ही सबकी शुद्धि का अभिप्राय है। इस प्रकार स्वामी जी के युक्ति युक्त अर्थ में आपको तो बेल बराबर छिद्र मालूम पड़ता है, परन्तु महीधर के अर्थ में बड़ा गूढ़ रहस्य भरा है जो इस मंत्र के अर्थ में लिखते हैं कि यजमान की पत्नी मरे हुये पशु के पास बैठ कर उसके नाक कान लिंग गुदा को जल से धोवे। शायद यह अर्थ आपको बहुत जंचेगा क्योंकि यह काम तो आपके घर बराबर होता होगा क्योंकि आप ठाकुर है। आप ही बतला दीजिये या ब्राह्मण सम्मेलन के कर्णधार श्री लक्ष्मण शास्त्री या अखिलानन्द को उत्तर देने के लिये लिख भेजियेगा या कालूराम जी की सहायता लीजिये कि आखिर मरे हुए पशु का लिंग पानी से धोकर क्या अंचार बनाया जाता है, या भरता बनाया जाता है या किसी देवता का भोग लगा कर मांसखोरों को प्रसाद बांटा जाता है गरज कि कौनसी फिलासफी भरी हुई है जिसके ऊपर आप लोग लट्टू हो रहे हैं और स्वामीजी के अर्थ में छिद्रान्वेषण कर रहे हैं। अब दास जी ही ईमान धर्म से बतलावें कि स्वामी जी की बुद्धि भ्रान्त थी या शास्त्रों की दोहाई देने वाले तुम्हारे नये नये सनातन धर्मियों की?

प्रस्तावना।

कालूराम मिश्रन द्वारा आर्य समाज के विरुद्ध जनता में अविश्वास और असन्तोष फैलाने के लिये बहुत से ट्रैक्ट निकले हैं। जिसमें आर्य समाज के विरुद्ध बहुत कुछ विषवमन हुआ है। इन ट्रैक्टों में झूठे झूठे आक्षेप किये गये हैं जिन्हें साधारण जनता स्वाध्यायकी कमी के कारण समझ नहीं सकती। इन ट्रैक्टों की कई आवृत्तियां निकल चुकी हैं, परन्तु अभी तक आर्य समाज के किसी सज्जन ने इस ओर ध्यान न दिया था। कई सज्जनों ने इनकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया। यद्यपि कार्यभार की अधिकता से मुझे समय की कमी है, तथापि इसकी आवश्यका अनुभव करके मैंने इस कार्य को हाथ में लिया और किसी न किसी तरह यह प्रथम पुष्प आप तक पहुँचाने का प्रयत्न किया। दयानन्द हृदय नामक ट्रैक्टके अन्त में "दयानन्द रचित यजुर्वेद भाष्य का संक्षित नमूना" दिया गया है। परन्तु लेखकने उन सभोंकी समीक्षा नहीं की है इसलिये उनका उत्तर नहीं लिखा गया है। यदि लेखक उनको समीक्षा करके जनता के सामने रखेगा तो उसका उत्तर दिया जायगा। यह पुस्तक अच्छी है या बुरी, उत्तर ठीक दिया गया है, या व्यर्थ कागज खर्च किया गया है, इसका अनुभव पाठक स्वयं करलें। यदि इस पुस्तक से लोगों का कुछ भी लाभ हुआ तो मैं अपने को कृत कृत्य समझूंगा।

लेखक की अन्य रचनायें

वेद और पशुयज्ञ	।)	शुद्धि सनातन है	॥।)
वैदिक वर्ण व्यवस्था	≡)	विधवा विवाह	)॥
सनातन धर्म रहस्य	⁄)॥	शुद्धि प्रश्नोत्तरी	)॥
स्वर्ग की नवीन बातें	⁄)॥	अजेयतारा सचित्र	१॥)
सरलसंस्कृत प्रवेशिका	१।)	विश्राम बाग सचित्र	१॥)

नवजीवन संचार करने वाली भारतीय
वीरों के जीवन चरित्र ।

महाराणाप्रताप सचित्र		१)	वीर मराठा बाजी राव पेशवा	१)
पृथ्वीराज चौहान	,,	१)	बुन्देल खण्ड केसरी छत्रसाल	१)
अमरसिंह राठौर	,,	१।)		
श्रीकृष्ण चरित्र	,,	।१)		
छत्रपति शिवाजी	,,	॥।)	वीर दुर्गावती	॥।)
पुनर्जन्म	,,	२)	सम्राट अशोक	१)
वीर कर्मदेवी	,,	॥।)	तरुणभारत	१)
लवकुश चरित्र	,,	।≤)	सृष्टिका इतिहास	१॥)
सप्त सोपान	,,	।≤)		

चौधरी एण्ड सन्स,
लाजपत राय रोड,
बनारस ।

ऋषि दयानन्द ग्रन्थ माला।

माला के स्थायी ग्राहकों के लिये नियम।

१. जो सज्जन ॥) पेशगी जमा करके स्थायी ग्राहक ह जायेगें, उन्हें माला की सभी पुस्तकें पौने मूल्य । दी जायंगी।

२. पुस्तक प्रकाशित होने पर उसकी सूचना प्रत्येक ग्राहव को पूर्व ही दी जायगी। पुस्तक लेने या न लेने क अधिकार उन्हें रहेगा।

३. पोस्टेज व्यय ग्राहकों के जिम्मे पड़ेगा।

४. इस ग्रन्थ माला के द्वारा अन्य प्रकाशित पुस्तकें भ पौने मूल्य में मिल सकेंगी।

५. पुस्तक भेजने की स्वीकृति पर वी. पी. न छुड़ाने प पर पोस्टेज व्यय ग्राहक के जिम्मे होगा।

व्यवस्थापक—